Reg. No. 124726035RC0001 ISSN : 2562-6086

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

A Peer Reviewed Journal

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

Our Golden Heritage

January-March 2024

January-March 2024

Pustak Bharati, Toronto, Canada

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

PUSTAK BHARATI RESEARCH JOURNAL

A Peer Reviewed Journal

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-6, जनवरी-मार्च , 2024, अंक 1

प्रधान संपादक : डॉ. रत्नाकर नराले

सह संपादक : डॉ. राकेश कुमार दूबे

रिव्यू कमेटी

डॉ. प्रो. तंकमणि अम्मा, तिरुवनन्तपुरम्

प्रो. हेमराज सुंदर, मारीशस

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, मुंबई

प्रो. डॉ. शांति नायर, केरल

डॉ. सिराजुद्दिन नुर्मतोव, उजबेकिस्तान

प्रो. दक्ष्य मिस्त्री, बड़ोदा

प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र, मुंबई

संपादक मण्डल

प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय, पश्चिम बंगाल

प्रो. विनोद कुमार मिश्र, त्रिपुरा

प्रो. उमापति दीक्षित, आगरा

प्रो. उपुल रंजीथ हेवावितानागामगे, श्रीलंका

डॉ. मैरम्बी नुरोवा, ताजिकिस्तान

प्रो. दर्शन पाण्डेय, दिल्ली

परामर्ष मण्डल

डॉ. तुलसीराम शर्मा, कनाडा

डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, नई दिल्ली

डॉ. एन. के. चतुर्वेदी, जोधपुर

प्रो. नीलू गुप्ता, अमेरिका

डॉ. मृदुल कीर्ति, आस्ट्रेलिया

प्रो. कमलेश शर्मा, कोटा

संरक्षक मण्डल

डॉ. यशवंत पाठक, अमेरिका

श्री रतन पवन, अमेरिका

श्री पंकज पटेल, अमेरिका

पत्रिका का मूल्य / सदस्यता राशि **संस्था** के सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मंगारी के खाता संख्या 5144696109 (IFSC: CBIN0281306) में जमाकर उसकी सूचना मेल या नं. +91-7355682455 पर दें।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

1. कर–नीति निर्धारण सिद्धान्त (मनुस्मृति के विशेष सन्दर्भ में) — 1
   सतीश प्रताप सिंह
2. पाली नील गोदाम (भदोही) : प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का साक्षी — 4
   शुभांगी श्रीवास्तव
3. कार्यानन्द शर्मा और किसान सभा : एक ऐतिहासिक विश्लेषण — 9
   डॉ. साकेत कुमार रवि
4. हालिदे एडिप एडिवर का जीवन, साहित्यिक व्यक्तित्व और भारतीय संस्कृति के बारे में उनके विचार — 13
   डॉ. मोहम्मद राशिद
5. आचार्य विनोबा भावे का ऐतिहासिक योगदान — 19
   डॉ. अनिल कुमार
6. अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में सांस्कृतिक संघर्ष और संक्रमण — 24
   मयूरिका मोहन
   प्रो. गीता कपिल
7. डॉ. काशीनाथ सिंह के संस्मरण साहित्य : भाषा शैलीगत विशेषताएँ — 29
   डॉ. एस. प्रीति
8. कहानीकार के रूप में भीष्म साहनी पर एक नजर — 43
   योरोवा सबाहत
9. वर्तमान भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य और समरसता — 47
   डॉ. कैलाश गहलोत
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : हिंदी भाषा की स्थिति — 52
   पैड़ला रवींद्रनाद

संपादकीय कार्यालय

Toronto, Ontario, Canada, M2R 3E4

email : pustak.bharati.canada@gmail.com

प्रबंध एवं वितरण

Pustak Bharati (Books-India)Publishers & Distributors

H.No. 168, Nehiyan,Varanasi-221202, U. P. India

email: pustak.bharati.india@gmail.com

* प्रत्येक शोध-पत्र में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। संपादक मंडल का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

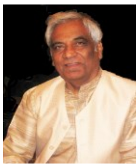

रत्नाकर नराले

पुस्तक भारती पत्रिका का नवीन अंक प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। वर्ष 2024 के प्रथम तिमाही में भारत और समूचे विश्व में फैले भारतीय लोगों के लिए कोई भी घटना इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी, जितनी कि श्री राम मंदिर की प्राण प्रतिष्ठा। यह कई सदियों के प्रयासों का फल था और करोड़ों नेत्र इस महान घटना के साक्षी बने। इस पुनीत लोक पर्व पर पुस्तक भारती परिवार की ओर से सभी को अभिनंदन और राम राम!

श्री राम मंदिर की प्राण प्रतिष्ठा का पुनीत कार्य भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी के कर कमलों से संपन्न हुआ। इस कार्य के लिए माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने पूर्ण अनुष्ठान का पालन किया। प्राण प्रतिष्ठा के अवसर पर यजमान (मोदी जी) से लाए गए उपहार को ग्रहण करने के साथ ही सम्पूर्ण कार्यक्रम में प. पू. स्वामी जी श्री गोविन्ददेव गिरि जी महाराज, ट्रेजरर ट्रस्टी, राम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट (अयोध्या) की भी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका थी। विश्व के कई देशों के प्रमुख गण्यमान व्यक्तियों के साथ ही भारत के प्रमुख नेतागण, संत समाज, उद्योगपति, सिनेमा जगत की प्रमुख हस्तियां, खिलाड़ी और धनी–मानी–दानी लोग उपस्थित थे। विश्व के करोड़ों लोग, जो वहां प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं थे, विविध दृश्य माध्यमों से इस घटना के साक्षी बने।

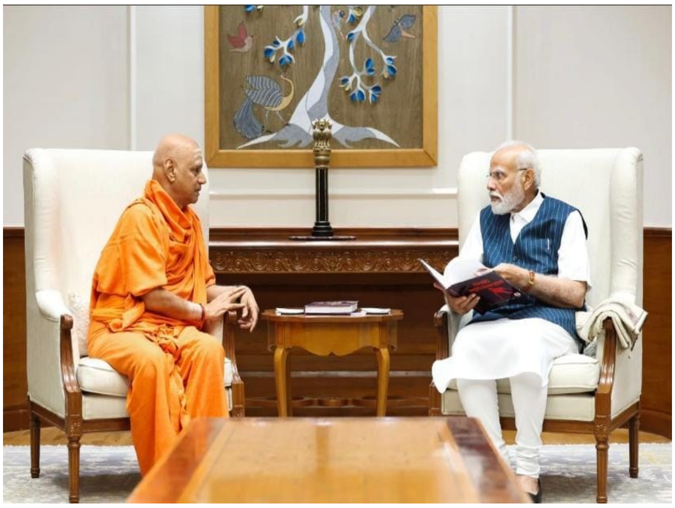

पुस्तक भारती परिवार के लिए यह सौभाग्य की बात है कि श्री राम मंदिर की प्राण प्रतिष्ठा के निमंत्रण पत्र के साथ ही पुस्तक भारती के निदेशक प्रो. रत्नाकर नराले की दो चर्चित पुस्तकें–"हिंदू राजतरंगिणी" और "श्री शिवाजी चरित्र दोहावली" प. पू. स्वामी जी श्री गोविन्ददेव गिरि जी महाराज द्वारा भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री जी को सादर भेंट की गई। इस अवसर पर स्वामी जी ने प्रो. रत्नाकर नराले का विस्तृत परिचय भी माननीय प्रधानमंत्री जी को दिया और "हिंदू राजतरंगिणी'' पर विस्तृत चर्चा की। पुस्तक भारती के लिए यह अत्यंत हर्ष का विषय है।

... संपादक

1

कर–नीति निर्धारण सिद्धान्त (मनुस्मृति के विशेष सन्दर्भ में)

सतीश प्रताप सिंह

सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के लिए राजा प्रजा कल्याणार्थ कर ग्रहण करता था। प्रजा की रक्षा के लिए राजा को पूरा प्रशासन व्यवस्थित करना पड़ता था जिसके फलस्वरूप वह प्रजा से कर के रूप में धन धान्य ग्रहण करता था। प्राचीन अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों में कर के पर्याय रूप में दो शब्द प्रचलित थे–भाग और बलि। अमरकोष में कर, बलि, भाग तीनों पर्यायवाची माने गये है।

भागदेयः करो बलिः।[1]

विष्णु स्मृति में भी भाग कर के लिए 'बलि' शब्द का प्रयोग है।[2]

खाद्यान्न वस्तुओं पर लगाया गया कर प्राचीन काल में बलि नाम से जाना जाता था।

बलि–कर राजकोष की आय का प्रमुख साधन था तथा जिसका व्यय प्रजा–रक्षण कार्य में होना था। मनु ने बलि कर का छठवाँ आठवाँ बारहवाँ भाग कर रुप में ग्रहण करने का निर्देश दिया है–

धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा।।[3]

मनुस्मृति में कर के पाँच रूपों का प्रमुख रुप से उल्लेख हुआ है जिसमें बलि, कर, शुल्क, प्रतिभाग और दण्ड है–

योऽरक्षन् बलिमादत्ते, करं शुल्कं च पार्थिवः
प्रतिभागं च दण्डं च, स सद्यो नरकं व्रजेत्।।[4]

कालिदास ने भी बलि को प्रजा कल्याणार्थ माना है। जैसे सूर्य पृथिवी से जल लेता है और उसके बदले में हजार गुना लाभप्रद वृष्टि करता है–

प्रजानामेव भूत्यर्थं, स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुम्, आदत्ते हि रसं रविः।।[5]

मनु, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, शुक्र आदि स्मृतिकारों ने कर–नीति निर्धारण में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जो प्रजा कल्याणार्थ था।

समस्त राज्य संचालन के लिए बृहस्पति ने राजा में मंत्रगुण, अर्थगुण तथा सहायगुण का होना अनिवार्य माना है। जनता में जिस राजा की गुणवान रुप में प्रसिद्धि है उसे अन्य लोग गुण विहीन नहीं कह सकते हैं–

गुणवानिति यः प्रोक्तः ख्यापितो जनसंसदि।
कथं तेनैव वक्रेण निर्गुणः परिकथ्यते।।[6]

राजा में अर्थगुण या आर्थिक नीति का विनिश्चय विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। कर–निर्धारण के सिद्धान्त में बृहस्पति का स्पष्ट मत है कि देश की परम्परा के अनुरुप प्रजापालन (प्रशासन) होना चाहिए अन्यथा प्रजा में क्षोभ व्याप्त हो जाता है। प्रजा शत्रु पक्ष की ओर आकर्षित हो जाती है और बल और कोश नष्ट हो जाते है।[7]

करनीति के निर्धारण में स्मृतिकारों ने निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन अनिवार्य माना है।

कर नीति का उद्देश्य लोकहित

सभी स्मृतिकारों ने कर निर्धारण का मुख्य उद्देश्य लोकहित माना है–

राजकीय आय का सबसे बड़ा साधन राजस्व था। कर निर्धारण के लिए देश, भूमि और प्रजा तीनों की स्थिति पर विचार करने का निर्देश स्मृतिकारों ने दिया है। उनके अनुसार कर वसूली अवस्थानुरुप षाण्मासिक या वार्षिक हो–

देशस्थित्या बलिं दद्युर्भूतं षण्मासवार्षिकम्।।[8]

मनु ने भी लोकहित में कर को थोड़ा–थोड़ा करके लेने का निर्देश राजा को दिया है जैसे–जोंक, बछड़े और भौरें अपने खाद्य पदार्थ को थोड़ा–थोड़ा करके खाते हैं वैसे ही राजा को भी राष्ट्र से वर्ष में थोड़ा–थोड़ा कर लेना चाहिए–

यथाऽल्पाऽल्पमदन्त्याद्यं वार्योको –वत्स –षट्पदाः।
तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद् राजाऽऽब्दिकः करः।।[9]

कर नियमित हो

स्मृतिकारों ने कर को धर्मानुसार ग्रहण करने का निर्देश दिया है क्योंकि जो राजा अज्ञानतावश अपनी प्रजा का शोषण करता है वह राज्य से शीघ्र भ्रष्ट होकर अपने बन्धु–बान्धव एवं स्वयं का विनाश करता है।

मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भ्रश्चते राज्याज् जीविताच्च सबान्धवः।।[10]

आचार्य बृहस्पति ने भी कर वसूली को एक नियमित प्रक्रिया माना है। उनका कथन है कि जो राजा अधिक लाभ की इच्छा से कम या अधिक कर ग्रहण करता है उसका राज्य वृद्धिमान न होकर

पतनोन्मुख हो जाता है–

योे राजा धनलोभेन हीनाधिकरप्रियः।
तस्य राष्ट्रं व्रजेन्नाशं न स्यात्परवृद्धिमत।।[11]

वृहस्पति का स्पष्ट मत है कि शुल्क स्थानों अथवा चुंगी घरों पर होने वाले अन्याय का प्रभाव राष्ट्र की प्रतिष्ठा पर पड़ता है–

शुल्कस्थानेषुयोऽन्यायः स्वल्पोऽपि च प्रवर्तते।।[12]

मनु ने भी अतितृष्णा पूर्वक न्यूनाधिक कर ग्रहण करने वाले राजा का तिरस्कार किया क्योंकि ऐसा करने पर राजा और प्रजा में मूलोच्छेद हो जाता है। अतः राजा स्नेहवश कम कर तथा लोभवश अधिक कर ग्रहण न करे–

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चाऽतितृष्णया।
उच्छिन्दन् ह्ययात्मनो मूलमात्मानं तांश् च पीड्येत्।।[13]

याज्ञवल्क्य ने भी कर को नियमित माना है तथा राजा को मूल्यनिर्धारण कर्त्ता मानते हुए वस्तु के मूल्यानुसार बीसवाँ भाग कर ग्रहण करने को कहा है–

अर्धप्रक्षेपणाद्विशं भागं शुल्कं नृपो हरेत्।
व्यासिद्धं राजयोग्यं च विक्रीत राजागामि तत्।।[14]

क्रमि कर–वृद्धि सिद्धान्त

स्मृतिकारों ने राज्य की आर्थिक व्यवस्था में कर को महत्वपूर्ण उपादान माना है। उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिया है कि कर वृद्धि अकस्मात नहीं करनी चाहिए कर को क्रमिक रुप से धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए ताकि कर के अभाव में कोष भी क्षीण न हो और कर की अधिकता के कारण प्रजा में उद्वेग भी न हो।[15]

महाभारत के शान्ति पर्व में भी कहा गया है कि जिस प्रकार बछड़ा गाय का दूध पीता है तथा उसके स्तनों को नहीं काटता है इसी प्रकार राजा को भी प्रजा से अधिक कर लेकर पीड़ित नहीं करना चाहिए।

वत्सापेक्षो दुहेच्चैव स्तनांश्च न विकुट्टयेत्।।[16]

मनु ने भी क्रमिक कर वृद्धि को देशकाल व अवस्था के अनुकूल माना है। व्यापारियों पर कर लगाने में क्रय–विक्रय, मार्ग–व्यय, भरण–पोषण रक्षा तथा निर्वाह व्यय आदि को ध्यान में रखकर कर लगाना चाहिए।

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च सम्प्रेक्ष्य वणिजो दापयेत् करान्।।[17]

राजा को कोश की अवस्थानुसार सदाकाल राष्ट्र में करों का निर्धारण करने का निर्देश मनु ने दिया है–

यथा फलेन युज्येत् राजा कर्ता च कर्मणाम्।
तथाऽवेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान्।।[18]

भीष्म ने भी उत्पत्ति दान, वृत्ति शिल्प आदि के आधार पर शिल्पियों पर कर लगाने का निर्देश दिया है–

उत्पत्ति दानवृत्ति च शिल्पं संप्रेक्ष्य चासकृत।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजः कारयेत्करान्।।[19]

शुक्र ने भी लाभ के अनुसार कर लगाने के सिद्धान्त का अनुमोदन किया है–

लाभं दृष्ट्वा हरेच्छुल्कं क्रेतृतश्च सदानृपः।।[20]

कर–मुक्ति सिद्धान्त

स्मृतिकारों ने राजा को कुछ व्यक्तियों से कर न लेने का निर्देश दिया है। मनु एवं नारद के अनुसार श्रेत्रिय को दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर शुल्क नहीं देना पड़ता था। ब्राह्मणों को उपहार की वस्तुओं पर कर नहीं देना पड़ता था–

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात् करम्।।[21]

मनु ने निर्धन ब्राह्मण, अन्धा, बालबुद्धि, दिव्यांग, वृद्ध तथा श्रेत्रिय से कर न लेने का निर्देश दिया है–

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश् च यः।
श्रोत्रियेषूपकुर्वश् च न दाप्याः केनचित् करम्।।[22]

इसी प्रकार मनु ने सन्यासी, गर्भिणी से भी तरण शुल्क न लेने का निर्देश दिया है।[23]

आपत्तिकाल में कर–नीति

स्मृतिकारों ने राजा को व्यवस्थानुरुप कर ग्रहण करने को कहा है। यदि राज्य में आपत्ति आती है तो राजा को आपत्तिकाल में प्रजा से निर्धारित शुल्क के अतिरिक्त कर ग्रहण करने का निर्देश दिया है। मनु ने आपत्तिकाल में धान्यादि उपज का चौथा भाग[24], धान्यादि के व्यापारियों सो आठवां भाग, हिरण्यादि के व्यापारियों से बीसवां भाग[25], याज्ञवल्क्य ने भी आपत्तिकाल में अन्योन्याश्रय रुप से जीविका चलाने का निर्देश दिया है–

क्षात्रेण कर्मणा जीवोद्विशां वाप्यापदि द्विज[26]।

इसी प्रकार बृहत्पराशर स्मृति में भी आपत्ति काल में महाजनों, कृपणों, अधमों तथा वेश्याओं से कर लेने को कहा गया है। बृहस्पति ने राजा को आपत्तिकाल के लिए कोष संचय करने को कहा है। इस प्रकार स्मृतिकारों ने आपत्तिकाल में राजा को उचित नीति से कर ग्रहण करने को कहा है।

अधिक एवं अनुचित कर का निषेध

सभी स्मृतिकारों ने अधिक तथा अनुचित कर

लेने का निषेध किया है तथा कहा है कि राजा को ऐसी नीति का अनुसरण करना चाहिए जिससे राजा और प्रजा दोनों का मूलोच्छेद न हो, वरन् उनका कल्याण हो। राजा को कार्य के अनुसार तीक्ष्ण व मृदु होना चाहिए क्योंकि इस प्रकार आचरण करने वाला राजा सबका प्रिय होता है। प्रजा को पीड़ित न करते हुए विभिन्न उपायों से राजा कर के माध्यम से धन संग्रह कर कोश को समृद्ध करे।

निष्कर्ष

कर की मात्रा का कोई शाश्वत व निश्चित सिद्धान्त नहीं है। इसे देश, काल, परिस्थिति के अनुसार न्यून व अधिक किया जा सकता है। जैसे–अथर्ववेद में सोलहवाँ भाग कर ग्रहण करने का निर्देश हुआ है जबकि स्मृतियों में अधिकांश वस्तुओं पर छठा भाग कर ग्रहण करने का निर्देश हुआ है इसी आधार पर संस्कृत साहित्य में राजा के लिए 'षष्ठांशवृत्ति' शब्द प्रचलित हो गया। वर्तमान समय में भी कर निर्धारण नीति के वही सिद्धान्त सर्वमान्य व सर्वव्यापक है जो अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों व स्मृतियों में वर्णित हैं। आधुनिक काल में भी आय का बहुत अधिक भाग कर रुप में ग्रहण किया जाता है फिर भी राजकोष में घाटा बना रहता है अर्थात् राजकोष समृद्ध नहीं हो पाता है, क्योंकि राष्ट्रीय सम्पत्ति का सरकार स्वेच्छानुसार दुरुपयोग करती है। अतः कर निर्धारण नीति का सफलता तभी निर्भर है जब उचित अर्थनीति निपुण अधिकारी प्रजा का ध्यान रखते हुए कर निर्धारण की व्यवस्था करें।

संदर्भ सूची :

1. अमरकोष, द्वितीय काण्ड, क्षत्र वर्ग, श्लोक–27
2. विष्णुस्मृति–22
3. मनुस्मृति–7/130
4. मनुस्मृति–8/307
5. रघुवंश–1/18
6. बृहस्पति स्मृति–व्य0का0 1/36
7. वही–1/127
8. वही–1/44
9. मनुस्मृति–7/129
10. मनुस्मृति–7/111
11. नीति0–पृ0 103
12. वही–पृ0 193
13. मनुस्मृति–7/139
14. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/261
15. बृहस्पति स्मृति–व्य0का0 1/127
16. महाभारत शान्तिपर्व–89/4
17. मनुस्मृति–7/127
18. मनुस्मृति–7/128
19. शान्ति पर्व–88/12
20. शुक्रनीति–4/221
21. मनुस्मृति–7/133
22. मनुस्मृति–8/394
23. मनुस्मृति–8/407
24. मनुस्मृति–10/118
25. मनुस्मृति–10/120
26. याज्ञवल्क्य स्मृति 3/35

असिस्टेंट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
कमला नेहरू पीजी कालेज तेजगाँव

2 पाली नील गोदाम (भदोही) : प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का साक्षी

शुभांगी श्रीवास्तव

शोधसार

प्रस्तुत शोध लेख में 1857 की क्रांति में भदोही की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। प्रारंभिक तौर पर शुरू हुए इस सिपाही विद्रोह ने जल्द ही व्यापक जनांदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। मेरठ से शुरू हुई यह क्रांति भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रसारित हो गई। 1765 ई. के इलाहाबाद की संधि के बाद से स्थापित ब्रिटिश साम्राज्य की बुनियाद को इस क्रांति ने डगमगा दिया। उदवंत सिंह, झूरी सिंह, शीतलपाल, मुसई सिंह आदि वीरों ने इस क्रान्ति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि इस क्रांति का दमन कर दिया गया परंतु इस क्रांति ने भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता समाप्त कर दिया और क्राउन के शासन के साथ भारत में ब्रिटिश शासन के नए अध्याय की शुरुआत की। इस क्रांति के तात्कालिक क्षेत्रीय प्रभावों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसने कालान्तर में भारत की आजादी का मार्ग प्रशस्त किया।

बीज शब्द : क्रांति, स्वतंत्रता, वृहत्तर, भूमिगत, विभीषिका, प्रशस्त, प्रतिबद्ध, अध्याय, संग्राम, शोषणकारी

1857 की क्रांति आधुनिक भारतीय इतिहास में मील का पत्थर होने के साथ साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इतिहास में भी अग्रिम मोड़ है। यह लगभग 100 वर्षों के औपनिवेशिक आर्थिक शोषण और विभिन्न प्रकार की शोषणकारी प्रशासनिक नीतियों की प्रथम व्यापक अभिव्यक्ति थी। 18वीं शताब्दी में भारत पर अंग्रेजों की विजय न सिर्फ भारतीय इतिहास की अपितु वैश्विक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। भारत जैसे विशाल और सभ्यतासंपन्न देश का एक छोटे से देश ब्रिटेन, जो जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों ही दृष्टि से कमतर है, के द्वारा अधिग्रहण निश्चित रूप से एक वैचारिक विषय है। इस विद्रोह के स्वरूप को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है, जिसके तीन प्रमुख आधार है- सामंती विद्रोह, सिपाही विद्रोह और स्वतन्त्रता का प्रथम संघर्ष। वी.डी. सावरकर अपनी पुस्तक 'इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस' में इसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहते हैं। इसी बात का समर्थन करते हुए एस.एन. सेन ने अपनी पुस्तक 1857 में लिखा है कि "जो कुछ भी धर्म के लिए लड़ाई के रूप में शुरू हुआ, वह स्वतंत्रता संग्राम के रूप में समाप्त हुआ।" वहीं साम्राज्यवाद के पक्षधर इतिहासकार मॉल्सन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ द इंडियन म्यूटीनी ऑफ 1857-58', टी.आर. होम्स ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ द इंडियन म्यूटीनी' में इस विद्रोह को मात्र सैनिक विद्रोह और बर्बरता व सभ्यता के विरुद्ध युद्ध बताया है। इस क्रांति को सभी इतिहासकारों ने अपनी आवश्यकतानुसार व्याख्यायित किया है परंतु वास्तविकता यह है कि इसकी शुरुआत भले ही सिपाहियों के द्वारा हुई हो लेकिन 10 मई, 1857 ई. को शुरू हुई यह क्रांति कालान्तर में एक जनव्यापक आंदोलन के रूप में प्रतिबद्ध हुई। सावरकर ने अपनी पुस्तक में इस आंदोलन के भागीदारों को इस तरह से परिभाषित किया है कि "जिन लोगों में और कुछ करने का साहस अथवा सामर्थ्य नहीं था, पर अपने इष्ट देवता की पूजा करते समय इतनी प्रार्थना भर की हो कि मेरी मातृभूमि को स्वतंत्र कर दो, उनका भी स्वतंत्रता प्राप्ति में स्थान है।" अर्थात् इसमें लगभग सभी वर्ग के लोगों की भागीदारी रही सैनिक, सामंत, मजदूर, कृषक, महिला, दलित। इनके अनुसार 1857 ईस्वी की क्रांति के जो प्रमुख कारण, दिव्य तत्व थे वह था स्वधर्म और स्वराज्य।[1] 1857 ईस्वी के दौरान भदोही में हुई वीभत्स घटना के पीछे भी स्वराज्य एक

बृहद कारण रहा है। एरिक स्टोक्स ने अपनी पुस्तक 'पीजेंट एंड द राज' में कृषक समुदाय की सक्रिय भागीदारी को इंगित किया है। इस क्रांति की गूंज कलम से ज्यादा लोकोक्तियों के माध्यम से सुनाई पड़ती है । क्षेत्रीय स्तर पर प्रसारित ऐसी कहावतें निश्चित रूप से इस क्रांति में सर्वव्यापक जन भागीदारी को सुनिश्चित करती हैं । मार्क्स ट्वैन के द्वारा उल्लिखित पुरातन शहर बनारस (काशी) जो इतिहास से भी पुराना है, परंपरा से भी पुराना है, किंवदंतियों से भी पुराना है और इन सभी को एक साथ रखने पर भी यह दोगुना पुराना लगता है, ऐसे शहर बनारस और तीर्थराज प्रयाग के मध्य अवस्थित भदोही जनपद की धरा पर भी 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव बखूबी दृष्टिगोचर होता है। मेरठ और दिल्ली से हुए विद्रोह के आगाज ने बनारस और उसके आस पास के क्षेत्रों के लोगों में भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ आक्रोश उत्पन्न किया। अंग्रेजों की प्रशासनिक और राजनीतिक नीतियों के खिलाफ गंगा, वरुणा और मोरवा नदी के तट पर अवस्थित भदोही जनपद, जो कि नवपाषाण काल से लेकर गुप्त काल तक की ऐतिहासिकता को अपने में समेटे हुए है, के गोपीगंज नामक स्थान पर अंग्रेजों के विरुद्ध हुए ऐतिहासिक घटनाक्रम ने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में क्षेत्रीय प्रतिरोधों को प्रमुखता प्रदान की। इस क्रांति की गंभीरता को डिजरायली के कथन से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, 'अगर समय रहते विद्रोह को नहीं कुचला गया तो हर रंगमंच पर भारतीय राजाओं के अलावा कुछ और पात्र भी दिखाई देंगे तथा उनसे भी अंग्रेजों को जूझना पड़ेगा।' हालांकि भदोही का यह आंदोलन अंग्रेजी सेना के नृशंसतापूर्वक दमन का शिकार हुआ, सीमा अल्वी अंग्रेजी सेनाओं की उपयोगिता के विषय में लिखती हैं कि "वास्तव में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना की भर्ती कंपनी के प्रभुसत्ता के विकास का केंद्रीय तत्व थी।"[2] दमनपूर्ण होने के बाद भी यह विद्रोह आगामी आंदोलनों की वृहत्तर पृष्ठभूमि बन सका जिससे भारत आजादी की ओर प्रशस्त हुआ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

धरती मां के ऐसे कई सुपुत्र हैं जिन्होंने इस देश की आजादी में अपनी महत्वपूर्ण और सक्रिय भूमिका निभाई। जितने इतिहास के पन्नों में उल्लिखित किए गए हैं, उनका नाम तो अमूमन सभी जानते हैं परंतु अनगिनत नाम ऐसे हैं जिनके अमूल्य योगदान का संकलन करना, इतिहास को सजीवता प्रदान करने वाले इतिहासकारों का कर्तव्य और दायित्व है। कोई भी आंदोलन तभी सार्थक होता है, जब वह सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर सीमित न रहकर आम जनमानस तक प्रभावी हो सके। 1857 की क्रांति के दौरान विभिन्न स्थानों पर पल्लवित हुए हमें ऐसे कई क्षेत्रीय प्रतिरोध देखने को मिलते हैं जो कि इस क्रांति के राष्ट्रीय होने के साथ साथ क्षेत्रीय स्वरूप को भी परिभाषित करते हैं। कुछ इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि इस समय राष्ट्रीयता जैसी कोई भावना नहीं थी इस कारण से इसे राष्ट्रीय विद्रोह नहीं कहा जा सकता था। परंतु यह तथाकथित सत्य है कि उस समय अंग्रेजी शासन की नीतियों और दमनकारी रवैए के कारण लोगों में आक्रोश मौजूद था। इस आक्रोश का एक उदाहरण हमें सुदयाल सिंह के पुत्र, उदवंत सिंह (जिसे भदोही के राजा की उपाधि प्राप्त थी) के अनुज भ्राता, मिर्जापुर मंडल के भदोही जनपद, परऊपुर में 21 अक्टूबर, 1816 ई. को जन्मे अमर शहीद झूरी सिंह के नेतृत्व में हुए ऐतिहासिक घटनाक्रम में देखने को मिलता है जिन्होंने 16 जून, 1857 ई. में अपने भाई उदवंत सिंह और उनके साथियों भोला सिंह, रामबख्श सिंह को फांसी की सजा सुनाने का बदला लिया,[3] जिसके कारण इनका नाम इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा। तत्कालीन भारतवासी अंग्रेजों की क्रूर औपनिवेशिक, स्वार्थपूर्णनीति के कारण निरंतर शोषित किए जा रहे थे। इस शोषण का एक महत्वपूर्ण कारण जबरन नील की खेती थी। भारत में नील की खेती 18 वीं शताब्दी के अंत से शुरू हुई, नील का प्रयोग रंग निर्माण के लिए होता था जो कि लाभ का उचित साधन था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जबरन नील की खेती को लेकर कृषकों के आक्रोश में वृद्धि हुई। बंगाल में बहुप्रचलित ददनी व्यवस्था के अंतर्गत कृषकों को अग्रिम राशि प्रदान कर भूमि पर जबरन नील की खेती कराई जाती थी। इसके साथ ही फसल नष्ट होने पर भी किसानों को ही हर्जाना देना पड़ता था। अंग्रेजों

के स्वहितों के पूर्ति के लिए किसानों को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक सभी प्रकार के कष्टों से गुजरना पड़ता था। विपिन चंद्र के अनुसार दरअसल नील उत्पादकों ने किसानों को जबरन नील की खेती करने पर अरसे से मजबूर कर रखा था जबकि किसान अपनी बढ़िया उपजाऊ जमीन पर चावल उगाना चाहते थे। अंग्रेजों की इन शोषणकारी नीतियों की समाप्ति पुलिस प्रशासन भी नहीं करता था। इस सन्दर्भ में विलियम एडवर्ड ने लिखा है कि "पुलिस को जनता कोढ़ के समान समझती थी'।[4] भदोही भी उपजाऊ भूमि के कारण अंग्रेजों की इस नीति से न बच सका। सी.ए. बेली ने अपनी पुस्तक में भदोही को उच्च कृषि उत्पादक क्षेत्र के रूप में सशक्त बताया है[5] जहां एक तरफ नील की जबरन खेती से बदहवास लोगो में अंग्रेजों की नीतियों के कारण क्रोध था, वहीं दूसरी तरफ लॉर्ड डलहौजी की राज हड़प नीति के द्वारा एक एक करके सतारा (1848), बघाट (1850), झांसी (1853), नागपुर (1854) राज्यों को हड़पने से भी देशी नरेशों के बीच आक्रोश व्याप्त था। भदोही में मौनस राजपूतों का राज्य छीन जाने से सरदार उदवंत सिंह 1857 की क्रांति में शामिल हो गए और नाना फडणवीस से अपना संबंध जोड़ लिया।[6]

भदोही में 1394 ई. में भर शासन काल की समाप्ति के बाद मौनस राजपूतों का सुनहरा काल लगभग 1740 ई. तक रहा। 1748 आते आते भदोही की जमींदारी काशीराज बलवंत सिंह के हाथों में आ गई और चेत सिंह के शासन काल में बनारस राज्य को कंपनी ने 1781 ई. में अपने अधिकार में ले लिया तथा भदोही की जागीर कंपनी ने जब्त कर ली।[7] स्थान स्थान पर नील की फैक्ट्रियां स्थापित कर नील की खेती करानी शुरू कर दी गई। इसी समय पाली में भी नील गोदाम स्थापित किया गया जो कि किसानो और मजदूरों के उत्पीड़न का कारण बना। जनता में यह कहावत फैल गई कि "राज वियापी अंग्रेजवा कर, डगरऊ नील बोआवत हय"।[8] इस समय पाली नील गोदाम का मैनेजर एडमंड जोन्स था और रिचर्ड मूर, जो कि मिर्जापुर जिले में कंपनी का ज्वाइंट डायरेक्टर था, स्थिति का पता लगाने के लिए अपनी बैठकें आयोजित करता रहता था।

पाली नील गोदाम (भदोही) का वर्तमान चित्र

कृषकों की क्षुब्ध स्थिति को देखकर नील की खेती न करने का प्रण लेने के लिए एक सभा 28 फरवरी, 1857 ई. को अभोली में आयोजित की गई। अंग्रेजों की इस पाशविक नीति का विरोध करने के लिए एक दल का निर्माण किया गया जिसमें प्रमुख रूप से उदवंत सिंह, रामबक्स सिंह, भोला सिंह, दिलीप सिंह, रघुवीर सिंह, माताबक्श सिंह, मुसई सिंह, परऊपुर निवासी राजकरण सिंह, बलभद्र सिंह, महेश प्रसाद गौरी, शिवदीन प्रमुख थे।

इस नीति के क्रियान्वयन में जनता ने इनका भरपूर सहयोग किया और 3 जून, 1857 को नील के खेतों में आग लगाकर क्रांति की शुरुआत हुई। राज्य अभिलेखागार लखनऊ में सुरक्षित रखी पी. वाकर की डायरी से 1857 के विद्रोह की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। यह उस समय वाराणसी संभाग के अंतर्गत मिर्जापुर के डिप्टी कलेक्टर थे। यह अपनी डायरी में लिखते हैं कि भदोही में क्रांति ने बहुत व्यापक रूप ले लिया था भदोही, गोपीगंज के थानेदार ने जिला अधिकारियों को सूचित किया कि भिंडा गांव के कुछ विद्रोहियों ने बनारस के सजावल की हत्या कर दी है। इस प्रकार की घटनाओं ने ब्रिटिश हुकूमत को हिला कर रख दिया। जॉर्ज टकर, जो तत्कालीन मिर्जापुर के कमिश्नर थे, ने विद्रोहियों के खिलाफ सख्त करवाई के आदेश जारी किए और निर्दोष गांवों में लूटपाट किया, क्रांतिकारियों के घर जलाए गए, पर कोई भी क्रांतिकारी वहां नहीं मिला। इस घटना से विद्रोहियों में आक्रोश और बढ़ गया। कालान्तर में उदवंत सिंह ने महाराज काशी नरेश की जमींदारी का विरोध करते

हुए स्वयं को भदोही नरेश घोषित किया साथ ही अपनी एक बड़ी सेना का निर्माण किया और अपने करीबी रामबक्स सिंह और भोला सिंह को दीवान का पद प्रदान किया। जून, 1857 को अंग्रेजों ने उदवंत सिंह और उनके साथियों को पकड़ने के लिए नई नीति बनाई। ज्वाइंट मजिस्ट्रेट विलियम रिचर्ड मूर ने समझौते के लिए उदवंत सिंह को धोखे से बुलाया था और समझौते की बात के बाद उन्हें तथा उनके साथियों को गोपीगंज बाजार के समीप दहशत फैलाने के लिए फांसी दे दी गई जिससे दहशत के स्थान पर अग्नि की ज्वाला भड़क गई।[9] 20 जून, 1857 को गोपीगंज के निकट शाही मार्ग पर मार्शल ला लागू करके उदवंत सिंह को इमली के पेड़ पर फांसी दे दी गई। वर्तमान समय में भी उन क्रांतिकारी वीरों का दर्द और निर्भीकता स्थानीय लोकोक्तियों के माध्यम से बयां की जाती है-

झूलि गइलें अमिली के डरियां,
बजरिया गोपीगंज कई रहलि।[10]

अमर शहीद ठाकुर झूरी सिंह

इस घटना से भदोही में बृहद जनांदोलन उठ खड़ा हुआ। उदवंत सिंह की विधवा स्त्री कुंवरी रत्ना सिंह ने अपने पति की मृत्यु का दोषी विलियम रिचर्ड म्योर को ठहराया। भाभी के द्वारा म्योर से बदला लेने की गुहार से प्रेरित होकर देवर झूरी सिंह ने इसका वध करने का प्रण किया। उदवंत सिंह की मृत्यु के बाद से ही विद्रोहियों के निगाह में पाली की नील फैक्ट्री चढ़ी हुई थी। एक दिन जब म्योर, मिस्टर जोन्स और क्लिंटन पाली गोदाम में बैठकर परिस्थितियों का जायजा ले रहे थे तभी 3 जुलाई, 1857 को झूरी सिंह ने आक्रमण कर दिया पर म्योर गोपीगंज की तरफ भाग निकला। शीतलपाल की मदद से अंततः वह पकड़ा गया और झूरी सिंह ने उसका शीष काटकर भाभी को भेंट किया।[11] क्राउन बनामझूरी सिंह गवाही के अनुसार पाली नील गोदाम में 4 जुलाई, 1857 ई. को शाम 4 बजे म्योर, ए.के. कैस, एम.के. जॉन का गला झूरी सिंह ने काट दिया। मूर का कटा सिर पूरे गांव में सोलह वर्षीय परऊपुर निवासी मुसई सिंह के द्वारा घुमाया गया। बाद में 5 जुलाई को मुसई सिंह को कालेपानी की सजा दी गई। झूरी सिंह इसके बाद लंबे समय तक भूमिगत रहकर अंग्रेजों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध करते रहे। इनके इस कार्य में सुरियावां, कृपालपुर, कारीगांव के लोगों ने निरंतर सहायता प्रदान की। जगदीशपुर बिहार के कुंवर सिंह के दल में सक्रिय सहयोग देकर उन्होंने इस क्षेत्रीय विद्रोह को राष्ट्रीय मुखरता प्रदान की। इस घटना ने अंग्रेजी ताकत को अंदर तक झकझोर दिया था। हालांकि उनके पास अंग्रेजी सेना के समान पर्याप्त सैन्य सुविधाएं और अस्त्र शस्त्र की अनुपलब्धता थी, बजाय इसके उनके अदम्य साहस और दृढ़ शक्ति ने अंग्रेजों को चुनौती दी और उन्हें सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रेरित किया। भदोही के नए ज्वाइंट मजिस्ट्रेट माखन लाल के द्वारा झूरी सिंह की गिरफ्तारी के आदेश दिए गए। 19 अगस्त को मेजर बार्नेट, मेजर साइमन, मिस्टर टकर, मिस्टर इलियट, पी. वॉकर और लेफ्टिनेंट हेग ने संयुक्त रूप से ठाकुर के दमन का फैसला किया ।[12] इनके डर से अंग्रेजी सरकार ने झूरी सिंह और उनके तीन सहयोगियों को गिरफ्तार करवाने वाले के लिए क्रमशः1000 रुपए और 500 रुपए की ईनाम राशि प्रदान करने की घोषणा की। चंद पैसों के लोभ के चलते उनके अपने ही साले ने, जो अंग्रेजों की मुखबिरी कर रहा था, उनके साथ विश्वासघात किया और झूरी सिंह को गिरफ्तार करा दिया। उनके ऊपर मिर्जापुर के जेल में वर्षों तक मुकदमा चला तदनंतर उनको ओझला (मिर्जापुर) में फांसी दे दी गई। जब तक वह अंग्रेजों के द्वारा पकड़े नहीं गए आजीवन उन्होंने ब्रिटिश शासन की समाप्ति के लिए संघर्ष किया। भले ही झूरी सिंह

अंग्रेजों की बर्बरता का शिकार हुए लेकिन इस घटना ने लोगों के मन से अंग्रेजी सत्ता का भय समाप्त किया और आगे आने वाले आंदोलनों के लिए इनके जैसे अनेकों झूरी सिंह को जन्म दिया। निस्संदेह पाली में स्थित यह नील गोदाम वर्तमान में आजादी के लिए प्रतिबद्ध वीरों की वीरता और उनके बलिदान का मिसाल पेश कर रहा है।

निष्कर्ष

1857 से लेकर वर्तमान समय और भविष्य में भी भारत की आजादी में भदोही की भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। आज भी अंग्रेजों के शोषण का प्रतीक पाली नील गोदाम भीषण विभीषिका की गवाही देता है। 1857 की यह घटना ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी, जिसने भारतीयों के मन में राष्ट्रवाद के बीज को प्रस्फुटित किया और एकता के मायने सिखाए। इसके बाद ब्रिटिश नीतियों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में हुए इस प्रकार के क्षेत्रीय प्रतिरोधों ने और उसमें अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीरों के द्वारा ही भारतीय स्वतंत्रता की आधारशिला रखी गई। निश्चित रूप से 1857 ई. का स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास का गौरवमयी पृष्ठ और परिवर्तन बिन्दु है।

संदर्भ सूची :

1. सावरकर. वी. डी, (2000), 1857 का स्वातंत्र्य समर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 38
2. बंदोपाध्याय, शेखर, (द्वि. सं. 2015), प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरिएंट ब्लैक्सवान, प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या 132
3. श्रीवास्तव, मदन गोपाल, (2008), विंध्य महोत्सव, स्मारिका, विंध्य महोत्सव समिति, विंध्याचल मंडल, मिर्जापुर, पृष्ठ संख्या 63
4. चंद्र, विपिन, (सं. 2019), आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या 130
5. बेली. सी. ए., (तृ. सं., 2012), रूलर्स टाऊनसमैन एंड बाजार : नॉर्थ इंडियन सोसाइटी इन द एज ऑफ ब्रिटिश एक्सपेंशन (1770-1870), कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड प्रेस, पृष्ठ संख्या, 24
6. सिंह, शमशेर बहादुर, (2006), भदोही का जनपदीय इतिहास, मौनस राजवंश प्रकाशन समिति, कोट, भदोही, पृष्ठ संख्या 51
7. रशीद एहसान एवं मोहम्मद अल्तमश, (2017-18), तारीख ए भदोही; भदोही एट ए ग्लांस, पृष्ठ संख्या 85
8. सिंह, शमशेर बहादुर, भदोही का जनपदीय इतिहास, पृष्ठ संख्या, 51
9. द्विवेदी, भारतेंदु (1997), अमर शहीद झूरि सिंह : स्वर्ण जयंती वर्ष स्मारिका (संपा. अर्जुनराम), राष्ट्रीय पर्व समारोह समिति, ज्ञानपुर, भदोही, पृष्ठ संख्या 17
10. पाण्डेय, क्षमा शंकर (2018), 1857, स्मृति और यथार्थ, अभिनव भारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 70
11. सिंह, पद्मिनी, श्वेता (2023) उत्तरप्रदेश का स्वंत्रता संग्राम (भदोही), प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 55
12. श्रीवास्तव, मदन गोपाल, विंध्य महोत्सव, स्मारिका, (2008), विंध्य महोत्सव समिति, विंध्याचल मंडल, मिर्जापुर, पृष्ठ संख्या 64

शोध छात्रा,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही
(महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी)

3

कार्यानन्द शर्मा और किसान सभा : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. साकेत कुमार रवि

आलेख सार

किसानों के सादगी–सी व्यक्तित्व, विनम्रता एवं शिष्टता की प्रतिमूर्ति पंडित कार्यानन्द शर्मा को आधुनिक भारत के इतिहास में जमींदारी के जोर–जुल्म और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करने वाले नेता के रूप में याद किया जाता है। इन्होंने अपने जीवन काल में संघर्ष के बदौलत जिस ऊँचाई को प्राप्त किया उसका वर्णन करना आसान प्रतीत नहीं होता है। उन्होंन बकाश्त आन्दोलन का नेतृत्व किया, जिसके विषय में कहा जाता है कि–"यह भारत का पहला किसान आन्दोलन था जो साम्यवादी आदर्शों एवं कार्यक्रमों पर चलाया गया।" इस आन्दोलन को समाप्त करने के लिए बिहार की कांग्रेसी सरकार ने अथक प्रयास किया लेकिन आन्दोलन और भी व्यापक एवं गतिमान होता चला गया। इस आन्दोलन के दौरान ही कार्यानन्द शर्मा का कांग्रेस एवं गाँधी के प्रति मोह भंग हुआ, जबकि कार्यानन्द शर्मा गाँधी को अपना आदर्श और कांग्रेस को किसानों का अन्नदाता मानते थे। इस प्रकार कांग्रेस की किसान विरोधी नीति होने के कारण शर्मा जी मार्क्सवाद के प्रति आकर्षित हुए। वे बिहार कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य बने और संगठन में सचिव के पद को भी सुशोभित किया। इतना ही नहीं वे संगठन के कार्य का निर्वहन करते हुए जीवनपर्यन्त किसानों एवं मजदूरों के हक के लिए लड़ते रहे।

कुंजी शब्द : (किसान आन्दोलन, बकाश्त आन्दोलन, मार्क्सवाद, साम्यवाद, जमींदारी प्रथा)

परिचय

किसानों के सादगी–सी व्यक्तित्व, विनम्रता एवं शिष्टता की प्रतिमूर्ति कार्यानन्द शर्मा का जन्म बिहार के तत्कालीन मुंगर जिले में लक्खीसराय (वर्तमान जिला) के निकट सहूर गाँव में 1901 ई० को गजाधर शर्मा के घर हुआ था। इन्हें आधुनिक भारत के इतिहास में जमींदारी के जोर–जुल्म और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करने वाले नेता के रूप में याद किया जाता है। कार्यानन्द शर्मा किसान नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त थे। इन्होंने बड़हीया टाल में जमींदारों के खिलाफ बकाश्त आन्दोलन का नेतृत्व किया। इस आन्दोलन के विषय में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के महान् नेता पी०सी० जोशी ने अपने आलेख 'कामरेड कार्यानन्द शर्मा' में लिखा है कि "यह भारत का पहला किसान आन्दोलन था जो साम्यवादी आदर्शों एवं कार्यक्रमों के आधार पर चलाया गया।

पंडित कार्यानन्द शर्मा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उन योद्धाओं में से थे, जिन्होंने महात्मा गाँधी के आह्वान पर सन् 1920 ई० में कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दिया और उस समय से मृत्युपर्यन्त यानी 1965 ई० तक अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रीय आजादी, विश्वशान्ति और समाजवाद के लिए दृढ़तापूर्वक समर्पित किया। शर्मा जी ने जिस गाँधी के आह्वान पर सब कुछ छोड़कर चले आए थे और उन्हें अपना आदर्श माना था उसी गाँधी के प्रति बकाश्त आन्दोलन के समय उनका मोह भंग हुआ। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि बकाश्त आन्दोलन को समाप्त करने के लिए बिहार की कांग्रेसी सरकार ने अथक परिश्रम किया और गाँधी ने कांग्रेस के विरुद्ध एक भी आवाज नहीं उठाई। हालाँकि इस आन्दोलन को दबाने में कांग्रेस असफल रही और कार्यानन्द शर्मा कांग्रेस के असहयोग नीति के कारण मार्क्सवाद के प्रति आकर्षित हुए। इस घटना के बाद वे बिहार कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य बन गये और संगठन में सचिव के पद को भी सुशोभित किया। वे अपने अंतिम साँस तक कम्युनिस्ट से जुड़े रहे। मृत्यु के समय शर्मा जी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय नियन्त्रण आयोग के सदस्य, बिहार राज्य परिषद् के सेक्रेटेरियट के सदस्य, बिहार राज्य किसान सभा के अध्यक्ष और बिहार राज्य खेत मजदूर सभा के महामंत्री थे।

बिहार में किसान नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती के सहयोगी के रूप में कार्यानन्द शर्मा एवं पं० यदुनन्दन शर्मा ने किसान आन्दोलन में अविस्मरणीय सहयोग प्रदान किया। "भारतीय

किसानों की गरीबी और दुर्दशा विश्व की भयानकतम सच्चाइयों में एक थी और भारत की कृषि समस्या को साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत सामान्य अर्थव्यवस्था तथा साम्राज्यवादी शासन द्वारा सम्पोषित मौजूदा सामाजिक संरचना से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।"[1]

सन् 1936 ई० में बड़हिया टाल के किसानों पर हो रहे अत्याचार को देखते हुए जिस आन्दोलन को प्रारंभ किया उसे बकाश्त आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। प्रश्न यह उठता है कि बकाश्त क्या है? बकाश्त वैसे क्षेत्र को कहा गया जिस खेत पर किसानों का मालिकाना हक नहीं था। जो सरकारी जमीन थी, उसे सरकार द्वारा कृषि के कार्यों हेतु जमींदारों को दी जाती थी और जमींदार के द्वारा किसानों को दिया जाता था। परन्तु जब ऐसे जमीन के स्वामित्व के लिए चिन्हित करने का प्रयास किया गया तो ये केवल सरकारी अथवा गैर–मजरूआ था। इसी प्रकार की जमीन पर स्वामित्व हेतु बकाश्त आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। 1930 ई० के दशक के उत्तरार्द्ध में बिहार बकाश्त संघर्ष का ज्वलन्त क्षेत्र रहा जो किसान सभा संगठन के मार्गदर्शन में चला। इस समय समाजवादी विचारधाराओं के मजबूत होने से वर्गीय–चेतना मजबूत हुई। इसी वर्गीय चेतना का प्रत्यक्ष परिणाम बकाश्त संघर्ष था।

वस्तुतः जमींदारी भूमि मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित थी जो क्रमशः–जाइरत, रैयती और बकाश्त थी।[2]

जाइरत जमींदारों की निजी भूमि थी जिसपर स्वयं जमींदार द्वारा अनाज उगायी जाती थी। जबकि रैयत, भूमि किसानों के अधिकार में होती थी जिसके लिए किसानों के द्वारा जमींदारों को किराया भुगतान किया जाता था। तीसरी प्रकार की भूमि जो बकाश्त भूमि थी यह भूमि तकनीकी रूप से जमींदारों के अधिकार में होती थी। लेकिन रैतय इस भूमि पर अपना अधिकार प्राप्त कर सकता था यदि वह यह सिद्ध कर दे कि उसने इस भूमि पर लगातार 12 वर्षों से खेती कर रहा है और नियमित रूप से लगान का भुगतान कर रहा है। जमींदार इसके लिए सतर्क रहते थे कि कोई रैयत इतने दिनों तक बकाश्त भूमि पर खेती न करे। इससे बचने के लिए किराया भुगतान की रसदी भी रैयतों को मुहैया नहीं कराई जाती थी।[3]

देश के अन्य भागों की तरह बिहार के किसानों की स्थिति भी ब्रिटिश काल में लगातार दयनीय हो रही थी। बिहार के जमींदार यहाँ के किसानों को किसी भी प्रकार की राहत देने को तैयार नहीं थे। दरभंगा के महाराज लक्ष्मीश्वर सिह ने "बंगाल टिनेन्सी एक्ट 1885" का उसी समय विरोध किया था और 28 मई, 1882 ई० को "बिहार लैण्ड लॉर्ड्स एसोसिएशन" ने अपनी बैठक में प्रस्तावित कानून को "अनावश्यक" कहा था। बाद में भी जमींदारों ने संगठित रूप से "काश्तकारी कानून" में किसी भी प्रकार के परिवर्त्तन का लगातार विरोध किया। फलतः 1922 ई० में सरकार ने यह कह कर कोई कानून नहीं बनाया कि किसानों और जमींदारों में इस बात पर मतभेद था। सरकार और जमींदारों में इस बात पर मतभेद था। सरकार और जमींदारों की मिलीभगत के कारण किसानों की स्थिति में कोई सुधार सम्भव नहीं था।[4] बंगाल से अलग स्वतंत्र बिहार प्रान्त की स्थापना के लिए जो आन्दोलन हुआ उससे बिहार में नयी राजनीतिक चेतना आयी और 1912 ई० में बिहार और उड़ीसा का अलग प्रान्त बनने से बिहारी शिक्षित मध्यवर्ग का विकास हुआ और बिहारियों की भूमिका में वृद्धि हुई।[5]

बिहार में बकाश्त आन्दोलन की प्रमुख विशेषता यह रही कि इस आन्दोलन को किसान वर्ग के सामाजिक आधार से ही नेतृत्व मिला। कुछ स्थानीय नेता, जो तात्विक रूप से किसान ही थे, उन्होंने बकाश्त आन्दोलन का सफल संचालन किया। ये नेता आरम्भ में गाँधी के शिष्य रहे लेकिन कालांतर में समाजवादी व साम्यवादी विचारधाराओं में दीक्षित होते हुए किसान संघर्ष के वर्गीय कार्यक्रमों पर इस आन्दोलन को खड़ा कर दिया। किसी भी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए एक सशक्त नेतृत्व की जरूरत होती है, जिसे इटली के सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी चिन्तक अंतोनियो ग्राम्शी ने 'आन्दोलन के मुख्यालय' की संज्ञा दी है।[6] सौभाग्यवश बिहार में बकाश्त संघर्ष को इस प्रकार का सफल नेतृत्व मिला। इनमें सहजानन्द सरस्वती, कार्यानन्द शर्मा, यदुनन्दन शर्मा, पंचानन्द शर्मा, राहुल सांकृत्यायन, यमुना कार्यी आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन नेतृत्वकर्त्ताओं के संरक्षण में बकाश्त आन्दोलन बिहार के विभिन्न प्रान्तों में जोर पकड़ा। जिनमें मुंगेर, गया, पटना, दरभंगा एवं सारण आदि जिले बकाश्त संघर्ष के हृदयस्थली के रूप में उभरा, तो प्रमुख नेता कार्यानन्द शर्मा, यदुनन्दन शर्मा, पंचानन्द शर्मा,

राहुल सांकृत्यायन एवं जमुना कार्यी इस आन्दोलन के रक्तवाहक बने।

सन् 1922–23 में मुंगेर में एक किसान सभा की स्थापना शाह मुहम्मद जुबैर, उपाध्यक्ष श्रीकृष्ण सिंह और सचिव नन्दकुमार सिंह एवं सुधेश्वरी चौधरी के नेतृत्व में हुई थी। किसान के समस्याओं पर कौंसिल के कुछ सदस्यों द्वारा भी प्रश्न उठाया गया था और इसके ऊपर सदस्यों द्वारा भाषण भी दिया गया। सन् 1927 में मुंगेर जिले के ही गिद्धौर और खैरा राज के कारिन्दों में जब असंतोष फैला तो उसका नेतृत्व भावी किसान नेता कार्यानन्द शर्मा ने किया था।[7] इन किसानों की शिकायतों को लेकर शर्मा जी गिद्धौर और खैरा राज के मैनेजर कार्टर से मिले। यहाँ किसानों में एकता देखने को मिली जिससे उत्साहित होकर कार्यानन्द लोगों के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर आन्दोलन को जोर देने में लग गये।

1920 से 27 के बीच बिहार में कोई संगठित किसान आन्दोलन नहीं था किन्तु किसानों के असंतोष ने विश्वव्यापी आर्थिक मंदी से उत्पन्न तबाही ने बरसने को मजबूर कर दिया। जिस प्रकार चार्ल्स स्टुअर्ट पारनेल आयरलैण्ड में 1879 ई० में "लैण्ड लीग" के पहले अध्यक्ष बने थे उसी प्रकार स्वामी सहजानन्द किसान आन्दोलन की आत्मा बन गये और जीवन की अंतिम सांस तक किसानों के हित में काम करना उनका मुख्य लक्ष्य बन गया।[8] इस कार्य को सफल बनाने में उनका सहयोग पं० कार्यानन्द शर्मा एवं यदुनन्दन शर्मा जैसे लोग करने लगे।

1920 और 1930 के दशक में जमींदारों द्वारा बिहार टीनेन्सी एक्ट में कई सुधार प्रस्तावित किये गये ताकि वे बकाश्त भूमि को पुनः ग्रहण कर अपने जियारत क्षेत्र का विस्तार कर सके। इन प्रस्तावों का तीखा विरोध विधान परिषद् के अन्दर और बाहर किसान नेताओं द्वारा किया गया।[9]

फरवरी, 1934 में बिहार में भूकम्प आया जो मुंगेर के लिए महाप्रलय था। इस वक्त कार्यानन्द शर्मा मुंगेर पहुँचकर स्वयं सवेकों का चार्ज अपने ऊपर ले लिया और एक साल तक जमकर राहत अभियान चलाया। समय–समय पर वे किसानों के साथ भी सम्पर्क स्थापित करते रहते थे।[10] इसी बीच 1935 ई० में इन्हें जमुई की सत्र में जिला किसान सभा का मंत्री निर्वाचित किया गया। इसके बाद वे पुनः किसान के संघर्ष को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया, क्योंकि 1927 ई० के बाद किसानों की शान्ति के कारण जमींदारों को अत्याचार बढ़ गया था। एक आवाज पर हजारों किसानों का एकजुट हो जाना मामूली बात थी। किसान जेल जाने के लिए तैयार थे, हर तरह की तकलीफों को सहन करने के लिए हमेशा तैयार बैठे रहते थे। अन्ततः महाराज को चानन मुद्दे पर समझौता करना पड़ा और राज्य के मैनेजर ने अपने कारनामों के लिए माफी माँगी।

इसके बाद 1937–39 ई० में उन्होंने बड़हिया टाल में प्रसिद्ध बकाश्त संघर्ष का नेतृत्व किया।[11] इस संघर्ष के कारण कई कांग्रेसी नेता भी उनके विरुद्ध षड्यंत्र करने लगे। सन् 1938 ई० में तत्कालीन कांग्रेसी सरकार द्वारा इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।[12] इन कारणों से धीरे–धीरे कार्यानन्द गाँधीवाद और गाँधीवादियों से विमुख होते गये। फलतः वे समाजवादी हो गये।[13]

सन् 1937–39 ई० में मुंगेर जिला का लक्खीसराय क्षेत्र बकाश्त संघर्ष का मुख्य केन्द्र था। यहाँ विशेषकर बड़हिया टाल क्षेत्र में भीषण संघर्ष हुआ। जहाँ पचासों हजार एकड़ भूमि खेती के लिए अनुपयुक्त है क्योंकि पानी जमा होने का स्थान नहीं है। वर्षा के बन्द होते ही सारा पानी गंगा से होकर बंगाल की खाड़ी से चला जाता है और वहाँ चारों ओर काली मिट्टी और गीली धरती रह जाती है। ये खेत बकाश्त के खेत कहे जाते हैं और सरकारी कानून कहता है कि बकाश्त खेत को एक साल जोत लेने पर किसान उसका अचल काश्तकार बन जाता है। मगर टाल वाले किसान उन खेतों पर कोई अधिकार नहीं रखते ऐसा जमींदारों की तरफ से कहा जाता है। किसानों से आधा से ज्यादा अनाज ही नहीं, भूसा आदि लेकर भी जमींदार रसीद नहीं देते। किसान अदालत के सामने सबूत क्या पेश करते इसके लिए वे जमींदार पर निर्भर रहते थे। वह जिनको चाहते खेत जोतने देता और जब चाहता किसी को भीख माँगने पर मजबूर करता। टाल के किसान पर जो जुल्म होने थे, उनकी लम्बी गाथा है।

ये किसान कार्यानन्द शर्मा के पास गये। सन् 1936 में कार्यानन्द शर्मा को बड़हिया टाल के किसानों के अत्याचार के विरुद्ध कमर कसनी पड़ी। असेम्बली के चुनाव में कांग्रेस के लिए जो प्रचार हुआ उसमें कांग्रेस के खिलाफ बड़े–बड़े जमींदार

खड़े हुए थे और चुनाव में कांग्रेस नेता किसान और जमींदार के विरोधी स्वार्थों को खूब अच्छी तरह समझते थे। यद्यपि मिनिस्टरी सम्भालने के बाद उनका रूप बदल गया था। टाल में किसानों का आन्दोलन पहले आठ गाँवों में शुरू हुआ और धीरे–धीरे चालीस गाँवों में फैल गया।

जमींदार बराबर जोतते आये खेतों को बोने से किसानों को रोक रहे थे। झगड़ा यहीं से शुरू हुआ। खेत न बोकर किसान चुप बैठने के लिए कैसे तैयार हो जाते। उन्होंने खेत को बोना चाहा। जमींदारों के पास गुण्डे, पहलवान, लठैतों दम पर वे किसानों का दमन करते थे। मगर अब इक्के–दुक्के किसानों को पीटना नहीं था। अब गाँव–गाँव के किसान जीव एवं जीविका एक करने के लिए तैयार था। पहले पिटकर किसानों को अदालत में पहुँचना पड़ता था और वहीं सुनवाई होने के लिए मोटी रकम की जरूरत पड़ती थी। अब अदालत का दरवाजा खटखटाना उन्होंने छोड़ दिया था। बड़ी–बड़ी जगहों तक रसूख रखने वाले जमींदार अपनी शिकायतें लेकर गये और मिलिट्री घुड़सवारों के कैम्प टाल की हरियाली में पड़ गये।

इस प्रकार टाल के क्षेत्र में बकाश्त आन्दोलन के बाद किसानों के मन से पुलिस, न्यायालय आदि का भय समाप्त हो गया। किसान अब अपने हक के लिए जमींदारों के खिलाफ आवाज उठाना शुरू किया इसका श्रेय सिर्फ और सिर्फ साम्यवादी किसान नेता कार्यानन्द शर्मा को जाता है।

सन्दर्भ सूची :

1. रजनी पाम दत्त; *आज का भारत*, हिन्दी संस्करण, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, 1977, पृ० 216–217
2. गिरिश मिश्रा, *सोशियोलॉजी एण्ड इकोनॉमिक्स ऑफ कास्टिज्म*, पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996, पृ०–227
3. वही, पृ० 227–228
4. राकेश गुप्ता, *बिहार पीजेन्टरी एण्ड दी किसान सभा (1936–1947)* पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ–78
5. के० के० दत्ता, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ आकादमी, पटना, 1957, खण्ड–3, पृ०–321
6. बिपिनचन्द्र; *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1900, पृ०–42
7. त्रिवेणी शर्मा सुधाकर, *महान जीवन लघु परिचय, कामरेड कार्यानन्द शर्मा*, गया, 1971, पृ०–4
8. के० के० दत्ता, *पूर्वोद्धृत*, पृ०–235
9. गिरिश मिश्रा, *पूर्वोद्धृत*, पृ०–228
10. अरविन्द नारायण दास, एग्रेरियन अनरेस्ट एंड सोशियो–इकोनॉमिक चेंज, (1900–1980), मनोहर पब्लिशर, नई दिल्ली,1993, पृ०–104
11. राहुल सांकृत्यायन; नये भारत के नये नेता, न्यू बुक सिंडिकेट, इलाहाबाद, 1953, पृ०–148
12. वही, पृ०–149
13. वही, पृ०–150

अतिथि प्राध्यापक,
के०एस०एस० महाविद्यालय लखीसराय,
मुंगेर वि०वि०, मुंगेर

4

हालिदे एडिप एडिवर का जीवन, साहित्यिक व्यक्तित्व और भारतीय संस्कृति के बारे में उनके विचार

डॉ. मोहम्मद राशिद

हालिदे एडिप अदीवर का तुर्की साहित्य में स्थान निर्विवाद है। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सक्रिय भाग लिया और संयुक्त रूप से काम किया। इस युद्ध में उन्होंने अपने लेखन कौशल से जो अनुभव प्राप्त किए उसे लोगों को युद्ध के सभी ज्ञात और अज्ञात पहलुओं को दिखाया। उन्होंने एक लेखक के रूप में अपनी प्रतिभा साबित की। इस लेख में हम हालिदे एडिप एडिवर के जीवन और कला की समझ के बारे में बताएंगे, जिन्होंने अपने लेखन से तुर्की साहित्य और विश्व साहित्य दोनों में अपने लिए एक जगह हासिल की है।

हालिदे एडिप का जन्म 1882 में इस्तांबुल के

बेसिकतास मोहल्ले में हुआ था। हालिदे एडिप के पिता सुल्तान द्वितीय और उनकी माता का नाम फातमा बेड्रिफेम था। हालिदे एडिप ने कम उम्र में ही तपेदिक की बीमारी के कारण अपनी माँ को खो दिया था। उन्होंने अपना बचपन अपनी दादी नकीये हनीम के साथ बिताया, जिन्हें हालिदे एडिप "हामिने" कहती थी। नकीये हनीम, जिनका हालिडे एडिप के बचपन पर बहुत प्रभाव था, एक पारंपरिक ओटोमन महिला के रूप में अपनी पहचान के साथ हालिदे एडिप के उपन्यासों में पारंपरिक महिला पात्रों पर अपना प्रभाव दिखाती हैं।

अपने पिता के पुनर्विवाह के बाद हालिदे एडिप एक नए घर में चली गई। हालाँकि, हालिदे एडिप, जो नए घर और जीवन की आदी नहीं हो पाती, बीमार हो जाती है। अपनी बीमारी के कारण, पर्पल वाइन हाउस में अपनी दादी के पास लौट जाती है। एक ही सप्ताह में अपने दादा और चाचा को खोने के बाद, हालिदे एडिप और उसका परिवार पर्पल वाइन हाउस को अलविदा कह देते हैं और एक अलग घर में चले जाते हैं। उस्कुदार और उसके आसपास के कुछ घर को बदलने के बाद, वे सेम्सी एफेंदी हवेली के किनारे चले गए। हालिदे एडिप ने इस कठिन अवधि के दौरान निजी शिक्षकों के साथ अपनी शिक्षा जारी रखी।

हालिदे एडिप जब बड़ी हुई तब वह उस्कुदर अमेरिकन कॉलेज फॉर गर्ल्स की परीक्षा में प्रवेश करती है और वह उत्तीर्ण हो जाती है। हालाँकि, एक छात्र की शिकायत पर, उसे स्कूल से निलंबित कर दिया जाता है और वह घर पर शिक्षा प्राप्त करना शुरू कर देती है। अपने अंग्रेजी शिक्षक के प्रोत्साहन से उन्होंने जॉन एबॉट की कृति "मदर" का तुर्की में अनुवाद किया। इस पुस्तक के अनुवाद के लिए उन्हें अब्दुल हामिद II द्वारा ऑर्डर ऑफ कम्पैशन से सम्मानित किया गया था। रिज़ा तेवफिक बोलुकबासी उन शिक्षकों में से एक थे जिनका हालिडे एडिप पर बहुत प्रभाव था।

जब हालिदे एडिप ने दूसरी बार अमेरिकन कॉलेज फॉर गर्ल्स में प्रवेश लिया, तो उन्होंने प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री सलीह ज़ेकी से निजी शिक्षा ली। श्री सलीह ज़ेकी और हालिदे एडिप के बीच शैक्षिक संबंध पत्राचार के साथ जारी रहा। हालिदे एडिप ने 1901 में अमेरिकन कॉलेज फॉर गर्ल्स से सफलतापूर्वक स्नातक की उपाधि प्राप्त की और अमेरिकन कॉलेज फॉर गर्ल्स से स्नातक करने वाली पहली तुर्की महिला बनीं। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद, हालिदे एडिप ने अपने शिक्षक सलीह ज़ेकी से शादी की, जिनसे उन्होंने निजी शिक्षा ली थी।

हालिदे एडिप सलीह ज़ेकी की शादी के पहले वर्षों में उनके काम में मदद करती थी। हालिदे एडिप, जिनके सलीह ज़ेकी से दो बेटे थे, अपनी बीमारी के कारण बर्गज़ादा में बस गए। संवैधानिक राजतंत्र की घोषणा के साथ, वह पूरी तरह से अपने लेखन जीवन में प्रवेश करती है। जब सलीह ज़ेकी दूसरी शादी करना चाहा तो, बहुविवाह से नफरत करने वाली हालिदे एडिप सबसे पहले अपने बेटों के साथ अपने पिता के पास जाती है। जब वह वापस लौटती है, तो वह सलीह ज़ेकी के साथ संबंध तोड़ लेती है।

1917 में वे शिक्षा देने के लिए सीरिया गयीं। जब वह सीरिया में थीं, तब उसने अपने पारिवारिक डॉक्टर अदनान से शादी की। डॉक्टर अदनान के साथ हालिदे एडिप की शादी दिलचस्प थी। यह विवाह 1955 में अदनान अदीवर की मृत्यु तक जारी रहा।

उन वर्षों के दौरान जब ओटोमन साम्राज्य ने प्रथम विश्व युद्ध में भाग लिया था, हालिदे एडिप ने अपने लेखन, अध्ययन और सम्मेलनों के साथ बौद्धिक क्षेत्र में काफी जगह हासिल की थी । प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, वह कमाल पाशा के अनुरोध पर एक शिक्षक के रूप में सीरिया गई। हालाँकि वह 1916 में ओटोमन साम्राज्य की राजधानी में लौट आईं, लेकिन लोगों पर युद्ध के प्रभाव ने लेखन के प्रति हालिदे एडिप के उत्साह को कम कर दिया। इस कारण से, वह सीरिया लौट जाती हैं, जहाँ वह एक शिक्षक के रूप में काम करती हैं।

1920 में इस्तांबुल पर ब्रिटिश सैनिकों द्वारा कब्जा करने के बाद, हालिदे एडिप और उनके पति डॉक्टर अदनान ने इस्तांबुल छोड़ने का फैसला किया और सैनिकों से छिपते हुए अंकारा पहुंचे। हालिदे एडिप यहां मुस्तफा कमाल और उनके हथियारबंद साथियों से मिलती हैं। राष्ट्रीय संघर्ष में मदद के लिए वह सबसे पहले अनुवाद और कार्यालय का काम संभालती हैं। फिर उसे घायल सैनिकों की देखभाल के लिए मोर्चे पर भेजा जाता है। हालिदे एडिप अपने भविष्य के उपन्यासों में मोर्चे पर अपने समय के दौरान घायल सैनिकों और ग्रामीणों से जो कुछ सीखा, उसे प्रतिबिंबित किया और पाठकों को युद्ध के अज्ञात पहलुओं को दिखाया।

गणतंत्र घोषित होने के बाद हालिदे एडिप अदीवर ने तुर्की साहित्य में अपनी जगह और मजबूत कर ली। अपने उपन्यास लेखन से प्राप्त इस स्थान ने हालिदे एडिप को यूरोप में प्रसिद्ध बना दिया। तथ्य यह है कि उनके पति अदनान अदीवर प्रोग्रेसिव रिपब्लिकन पार्टी के संस्थापकों में से थे, जिसके कारण हालिदे एडिप को विपक्षी पक्ष में आना पड़ा। ऐसे क्षणों में जब राजनीतिक समस्याएँ बढ़ जाती हैं, हालिदे एडिप इलाज के लिए वियना जाती हैं। वियना के बाद वे 4 साल तक लंदन में रही। अदीवर दंपत्ति 1939 में देश लौट आए। हालिदे एडिप इस्तांबुल विश्वविद्यालय में अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रोफेसर के रूप में काम करती रही। हालाँकि उन्होंने कुछ समय के लिए इज़मिर से संसद सदस्य के रूप में कार्य किया, लेकिन वे इस्तांबुल विश्वविद्यालय में अपने पद पर लौट आई। 1955 में अदनान अदीवर की मृत्यु के बाद उन्हें भारी तबाही का सामना करना पड़ा। हालिदे एडिप, जिन्होंने अपने जीवन साथी को खो दिया था, 9 जनवरी, 1964 को अपनी मृत्यु तक का समय स्वास्थ्य समस्याओं से जूझते हुए बिताया। हालिदे एडिप एडिवर को इस्तांबुल मर्केज़ेफ़ेंडी कब्रिस्तान में दफनाया गया।

हालिदे एडिप के लिए लंदन एक महत्वपूर्ण स्थान था। हालिदे एडिप, जिन्होंने यहां कई सम्मेलनों और बैठकों में भाग लिया, ने इस शहर में अपनी अंग्रेजी रचनाएँ लिखीं। यूरोपीय जीवन के इन 4 बहुमूल्य वर्षों के अंत में, वह पेरिस चली जाती हैं, जहाँ वह 10 वर्षों तक रहीं। तुर्की के बाहर बिताए गए वर्षों के दौरान, उनके पति अदनान अदीवर हमेशा हालिदे एडिप के साथ थे। हालिदे एडिप, जो निर्वासन

के इन लंबे वर्षों के दौरान अमेरिका और भारत भी गई, भारत में एक विश्वविद्यालय की स्थापना में मदद की। हालिदे एडिप, जिन्होंने अपने व्याख्यानों से बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की और अपनी पुस्तक "इनसाइड इंडिया" में भारत की अपनी यादों का वर्णन किया है।

गणतंत्र की घोषणा से पहले और बाद के साहित्यिक जीवन में हालिदे एडिप का महत्वपूर्ण स्थान है। वह अपने व्यक्तित्व से विचलित हुए बिना, अपने विचारों का अंत तक बचाव करती रहीं।

पूर्व-पश्चिम संश्लेषण में अपने व्यक्तित्व को आकार देने वाली हालिदे एडिप का तर्क है कि पूर्व और पश्चिम के बीच चयन करने के बजाय दोनों संस्कृतियों को जोड़ा जा सकता है। वह इस विचार को अपने उपन्यासों और लेखों में समझाती हैं। पूर्व-पश्चिम मुद्दा, जो उनके दौर का सबसे बड़ा बहस का विषय था, अन्य लेखकों की तरह हालिदे एडिप के उपन्यासों में एक बड़ा स्थान रखता है।

हालिदे एडिप के उपन्यासों में महिला पात्र सबसे आगे हैं। हालिदे एडिप का लक्ष्य अपने उपन्यासों में चित्रित मजबूत महिला प्रकारों के साथ समाज में महिलाओं के स्थान को आकार देना है, महिला पात्रों के माध्यम से पूर्व-पश्चिम मुद्दे से निपटने की कोशिश करती हैं। हालिदे एडिप के अनुसार, महिलाओं को न तो पूर्वी संस्कृति की तरह निष्क्रिय होना चाहिए और न ही उन महिलाओं में से एक होना चाहिए जो पश्चिमी संस्कृति में नारीवादी समझ के साथ अपनी स्त्रीत्व को भूलकर मर्दाना बन जाती हैं। महिला में पूर्वी महिला की करुणा और प्रेम तथा पश्चिमी महिला का आत्मविश्वास और उद्यमशीलता की भावना होनी चाहिए।

जब हालिदे एडिप का जिक्र होता है तो सबसे बड़ी घटना जो दिमाग में आती है वह है स्वतंत्रता संग्राम। हालिदे एडिप, जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से युद्ध में भाग लिया था और इस संबंध में अनुभव रखती हैं, इस अनुभव को अपने उपन्यासों में सफलतापूर्वक स्थानांतरित करती हैं। उनके उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का यथार्थवाद हालिदे एडिप को इस विषय पर उपन्यासों के बीच एक अलग स्थान पर ले जाता है।

वे अपने उपन्यासों में जिस शैली का प्रयोग करती हैं वह समझने योग्य एवं सरल है। हालिदे एडिप, जिनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय साहित्य की समझ के करीब है और उनका लक्ष्य समाज के करीब जाना है, अपने उपन्यासों में ऐसी भाषा का उपयोग करती हैं जिसे समाज समझ सके। उन्होंने अपना तुर्की समर्थक रुख बरकरार रखा और जीवन भर अरबी और फ़ारसी शब्दों और वाक्यांशों के प्रयोग से दूर रही।

1935 में, हालिदे एडिप को डॉ. अंसारी द्वारा भाषणों की एक श्रृंखला देने के लिए दिल्ली में आमंत्रित किया गया था, जिनसे उनकी मुलाकात लगभग बीस साल पहले (1913 में) इस्तांबुल में हुई थी, और जो इस्तांबुल भेजे गए आईपी आयोग के प्रमुख थे। उस समय भारत सरकार द्वारा उन्हें जामिया मिलिया इस्लामिया में आमंत्रित किया गया था। एडिप के भाषणों में भाग लेने के इच्छुक हजारों दर्शक टिकट खरीदते हैं और सम्मेलन हॉल में प्रवेश करते हैं, जो भारत में हालिदे एडिब की लोकप्रियता का सबसे स्पष्ट संकेतक है। हैदराबाद में सिटी काउंसिल में उनके द्वारा दिए गए भाषण में 5000 लोग शामिल हुए और कलकत्ता में उनके भाषण में 10,000 से अधिक लोग शामिल हुए। जामिया मिलिया इस्लामिया में हलिदे एडिब द्वारा दिए गए आठ भाषण तुर्की में पूर्व और पश्चिम का संघर्ष शीर्षक के तहत दिए गए थे।

उन्होंने 18-24,1935 और 24-24 में लखनऊ के सम्मेलन और फिर 09-26 फरवरी को कलकत्ता के सम्मेलन में भाग लिया। इसके अलावा दिल्ली और हैदराबाद के सेमिनार में भी अपनी भागीदारी पेश की। 11-12 मार्च 1996 को गांधी जी से मुलाकात करने वर्धा गई इसके बाद वह 14 मार्च, 1935 को तुर्की लौट आईं। उनका जीवन और भारत में उनके तीन महीनों के अनुभव को अपनी पुस्तक "inside İndia" में स्थान दिया। इसके बाद इसे 19 मार्च, 1938 से 2 अगस्त, 1938 तक "तान" अखबार में

"अज का हिंदुस्तान" के रूप में तुर्की भाषा में प्रकाशित किया गया। 2015 में, इसे तुर्की भाषा में "अबाउट इंडिया" को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया।(1)

इनसाइड इंडिया में एडिप का राजनीतिक विश्लेषण और जिन भारतीय महिलाओं और पुरुषों को वह "राजनीतिक विषयों" के रूप में जांचने की कोशिश करती हैं, वे वास्तव में इंडोलॉजी प्रवचन और तुर्की में भारत पर जो लिखा गया है, दोनों के संदर्भ में एक बहुत ही अनोखी स्थिति में हैं। सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक भारत में व्यक्तियों और संगठनों के माध्यम से विकसित होने वाली राजनीतिक बहसों का विश्लेषण करना है, जो स्वतंत्रता की राह पर है, और साथ ही सभी अभिनेताओं को "राजनीतिक विषयों" के रूप में बनाने के तरीकों का प्रयोग करना है।". इनसाइड इंडिया में, हालिदे एडिब का स्वप्नलोक उपनिवेशवाद के खिलाफ एकजुट, समाजवादी भारत है। अर्थात् अहिंसा प्रतिरोध का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

जिस दौर में "अबाउट इंडिया" प्रकाशित हुई यह वह दौर था जब तुर्की में भारत के प्रति रुचि अपने चरम पर थी। 15-20 साल पहले आजादी की लड़ाई लड़ने वाले तुर्की के लिए भारत के बारे में जो लिखा गया है उसे पढ़ना स्वतंत्र भारत के साथ "साहचर्य" स्थापित करने का एक तरीका है। 1930 और 1940 के दशक में रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुवाद भी प्रकाशित हुए और यूरोपीय लेखकों को छोड़कर, टैगोर तुर्की में सबसे अधिक पढ़े जाने वाले लेखकों में से एक बन गए।(2)

इतिहासलेखन, लिंग, वर्ग, उपनिवेशवाद और प्राच्यवाद की आलोचना के मामले में भारत न केवल हालिडे एडिब कृति के भीतर एक अद्वितीय स्थिति में है, बल्कि यह एक अंतर-शैली प्रयोग भी है। इसमें शामिल विभिन्न शैलियों को ध्यान में रखते हुए, इनसाइड इंडिया, एक ओर, एक "जीवनी शब्दकोश" है(3) जिसमें एडिप से भारत में मिले नेताओं, कार्यकर्ताओं और दोस्तों के चित्र शामिल हैं, जीवनी संबंधी शब्दकोशों की तरह वर्णमाला क्रम में नहीं, बल्कि विषयगत और, कुछ अनुभागों में, कालानुक्रमिक क्रम में है। उनकी जीवनियाँ बहुत सावधानी से लिखी गई हैं; उनकी शिक्षा, उनके द्वारा पढ़ी गई किताबें, उनके राजनीतिक विचार, उनके घर, भारत के इतिहास में उनका महत्व, उनके यूरोपीय और तुर्की समकालीनों के साथ उनकी समानताएं या मतभेद, और भारत के लिए उनके द्वारा निर्मित यूटोपिया इस शब्दकोश की आधारशिला हैं।

इस अवसर पर उन्हें मोहनदास करमचंद गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरोजिनी नायडू, मोहम्मद और शौकत अली, मोहम्मद इकबाल, अब्दुल गफार खान, डॉ. जाकिर हुसैन से लेकर बहन कस्तूरबाई और ज़ोहरा अंसारी तक कई भारतीय लोगों से मिलने का अवसर मिला। उपनिवेशवाद के खिलाफ सबसे बड़े संभावित प्रतिरोधों में से एक है भारत में ब्रिटिश और ब्रिटिश राजनीतिक हस्तियों के आधिपत्य पर ध्यान केंद्रित किए बिना, भारतीय राजनीतिक हस्तियों की आवाजों पर जोर देकर और उन्हें शामिल करके भारत का इतिहास लिखना।

एक ओर जहां भारत के विभिन्न शहर और विभिन्न धर्म एक ही स्थान पर हैं। बहु-धार्मिकता, केवल कोई धर्म नहीं, न केवल कुछ लोगों के लिए विशिष्ट स्थान, बल्कि ऐसे स्थान जहां हर कोई, पुरुष, महिलाएं और सभी वर्ग एक साथ हो सकते हैं, एकता पर जोर देने के लिए प्रार्थनाएं की जाती हैं, गांधी को ऐसे नेता के रूप में सामने लाया जाता है जो सभी धर्मों के लोगों को एकजुट हो सकते हैं।

एडिप गांधी जी की तुलना लेनिन से करती हैं और उन्हें श्रेष्ठ मानती हैं। लेनिन हिंसक और अहिंसक दोनों तरीकों का उपयोग करते हैं, एक महान राज्य की सभी ताकतों की कमान संभालते हैं, जबकि

महात्मा गांधी जी अहिंसा की सीमाओं के भीतर रहते हैं; कोई भी राज्य शक्ति अपनी राजनीतिक परियोजनाओं को आकार देने के लिए उसके नियंत्रण में नहीं रहता है। इसके विपरीत, उसे अक्सर अपने लोगों को जेल से शासन करना पड़ता है जबकि वह स्वयं उत्पीड़न के अधीन होता है।(4)

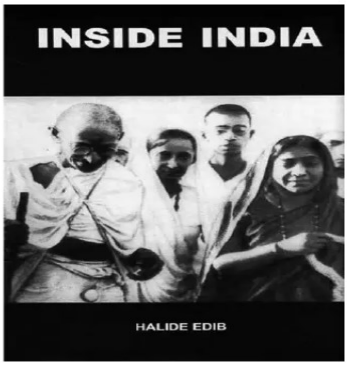

गांधी जी के विचार में "अस्पृश्यता" और "जाति" के प्रति एडिब का दृष्टिकोण इस "अनिवार्यवादी" दृष्टिकोण से भिन्न है। प्रतिरक्षा एक सामाजिक समस्या है जिसे हल करने की आवश्यकता है। गांधी जी के लिए, समाधान हिंदू धर्म के भीतर सुधारों से शुरू होगा, और जो लोग सुधार करेंगे वे हिंदू होने चाहिए। गांधी जी का मानना था कि "अस्पृश्यता" एक हिंदू पाप हैं।(5)

हिंदू धर्म और अस्पृश्यता और जाति की चर्चा में, गांधी कहते हैं कि अगर किसी को हिंदू धर्म और/या अस्पृश्यता के बीच चयन करना है, तो सबसे महत्वपूर्ण कारक अस्पृश्यता से छुटकारा पाना है: "जाति" पर गांधी के विचार ठोस नहीं हैं, लेकिन उनके विचार "अस्पृश्यता" पर स्पष्ट और काफी मजबूत दोनों है। हिंदू धर्म की निरंतरता के लिए अस्पृश्यता से पूर्णतः मुक्त होना आवश्यक है।

गांधीजी ने अपने सत्याग्रह को रोकने के लिए गहरे व्यक्तिगत कारणों को जिम्मेदार ठहराया। सत्याग्रह के कारण बहुत खून बहाया गया और कई दर्दनाक घटनाएँ घटीं, लेकिन गांधीजी का इसे रोकने का कारण मौतों और पीड़ा को समाप्त करना नहीं था। गांधीजी के अनुसार, जनता को पहले "इच्छाशक्ति" और "निडरता" की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए; ऐसी शिक्षा के बिना सत्याग्रह नहीं चल सकता।(6)

हालिदे एडिप के काम "इनसाइड इंडिया" के दूसरे भाग में दिल्ली के अलावा अन्य शहरों की उनकी यात्राएं और भारतीय संस्कृति के बारे में उनकी टिप्पणियां शामिल हैं। लाहौर (पृ.85-89), पेशावर (पृ.90-99), लखनऊ (पृ.100-113), बनारस (पृ.114-126), कोलकाता (पृ.127-140), हैदराबाद (पृ.141)) जैसे महत्वपूर्ण शहरों और वहां उनके अवलोकनों का लेखिका वर्णन करती है, और उन लोगों का भी उल्लेख करती हैं जिनसे वह वहां मिली थीं। इन यात्राओं के दौरान, हालिदे एडिप ने कई कॉलेजों और एसोसिएशनों में सम्मेलन किए और विभिन्न मुद्दों पर अपनी राय व्यक्त की। यह भी उल्लेखनीय है कि लेखिका की हैदराबाद यात्रा के दौरान, उनकी मुलाकात राज्य के पूर्व राजा में से एक और यहां रहने वाले खलीफा अब्दुल मजीद की बेटी दुर्र-ए सहवार से हुई थी।

हालिदे एडिब के भारत प्रवास के दौरान, देश के भविष्य के बारे में राय और मूल्यांकन ने भारत में एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया शुरू की, जो स्वतंत्रता के कगार पर थी। मुसलमानों और हिंदुओं दोनों के बीच मतभेदों ने नव स्थापित राज्य की विशेषताओं और राजनीतिक और सांस्कृतिक संरचना को आकार दिया। इस अवधि के दौरान, हालाँकि अभी तक स्वतंत्रता के लिए कोई गंभीर कदम नहीं उठाया गया था, फिर भी अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता प्रतिरोध की विशिष्ट विशेषता धीरे-धीरे उभरने लगी। ऐसे समय में जब भारतीय लगभग हर जगह "भविष्य में किस प्रकार का भारत स्थापित किया जाएगा" पर चर्चा कर रहे थे, चर्चा और राय के सबसे गर्म समय में हालिदे एडिप को भारत में आमंत्रित किया गया था।

सन्दर्भ सूची :

1. Halide Edip Adıvar ''About İndia'' (published by Mustafa Çevik Doğan) Can Publisher, İstanbul 2014

2. 10. Laurent Mignon. “Peace, Bliss and Poetry’: The Re-cepton of Tagore in Turkey”, Hundred Years of Tagore Re-cepton: 1913-2013 (Edited by I. Bangha, U. Das Gupta & M. Kämpchen), [in the process of publication]
3. 3-11. Early examples of biographical dictionaries are seen in the Islamic world in the 9th century. There were also a few examples of this genre in India before the period Halide Edib wrote. One example that Halide Edib may have read (including some of the characters in Inside India) is The Indian Biographical Dictionary by Hayavadana Rao, published in English in 1915. Rao’s biographical dictionary of India also includes female historical actors in the 9th century examples. Rao’s biographical dictionary also includes British people in colonial institutions.
4. Inside India, p.201
5. Inside India, p.45
6. Inside India, p.181

Eastern Languages and Literatures,
Istanbul University Istanbul
Turkiye

5

आचार्य विनोबा भावे का ऐतिहासिक योगदान

डॉ. अनिल कुमार

आचार्य विनोबा भावे भारत के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, सामाजिक सुधारक, सर्वोदय आन्दोलन के प्रणेता, महान विचारक तथा महात्मा गाँधी के मानसपुत्र थे। विनोबा भावे भारत के भूदान आन्दोलन के भी प्रणेता रहे। वे गाँधी जी की तरह ही अहिंसा के पुजारी थे। गाँधी जी ने उन्हें पहला सत्याग्रही बताया था। उन्होंने अहिंसा और समानता के सिद्धान्तों का पालन करते हुए अपना जीवन गरीबों, वंचितों और शोषित वर्ग के लिए लड़ने में लगा दिया। उनको भूदान आन्दोलन से सबसे ज्यादा लोकप्रियता प्राप्त हुई। सामुदायिक नेतृत्व की श्रेणी के तहत आचार्य विनोबा भावे जी 1958 में रमन मैग्सेसे पुरस्कार प्राप्त करने वाले पहले अंतर्राष्ट्रीय और पहले भारतीय व्यक्ति थे। उन्हें मरणोंपरान्त, 1983 में भारत रत्न से भी सम्मानित किया गया। प्रस्तुत शोध आलेख में आचार्य विनोबा भावे के ऐतिहासिक योगदान का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द : सर्वोदय, सत्याग्रह, स्वराज्य, भूदान, अहिंसा, आमरण अनशन ।

उद्देश्य

1. विनोबा भावे की सहजता, लगनशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा के महत्व को बताना है।
2. भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में गांधी जी के उत्तराधिकारी के रूप में विनोबा भाव को प्रतिस्थापित करना।

अध्ययन पद्धति

शोध लेख के रूप में आचार्य विनोबा भावे के बारे में लिखना, विचार करना, सोचना अंसभव है। उनके द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य अथवा उनके मुखारबिन्दु से निकले प्रत्येक शब्द पर लिखा जाय तो भी कम पड़ जायेगा। परन्तु फिर भी एक शोध आलेख में लिखने का प्रयास किया गया है। शोध लेख कार्य हेतु अनेक विद्वानों द्वारा लिखे गये ग्रंथों की सहायता ली गयी है। प्रमुख ग्रंथों राकेश कुमार शुक्ल, शोध प्रबन्ध, भारत में सर्वोदय की अवधारणा (विनोबा भावे के विशेष संदर्भ में), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2004; गजेन्द्र कुमार, शोध प्रबंध : राष्ट्रीय आंदोलन और विनोबा भावे : एक अध्ययन, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा, 2004; सुनिता सिंह, शोध प्रबंध : आचार्य विनोबा भावे का राजनीतिक चिन्तन–एक समीक्षात्मक अध्ययन, बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, 2000; विनोबा साहित्य शाह, कांति, विनोबा : जीवन और कार्य, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, जनवरी, 1984; डॉ0 विश्वनाथ टंडन, 'आचार्य विनोबा भावे', पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली, 1992; ललित कुमार, विनोबा भावेः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पंखुडी, Peer Reviewed/Refereed Research Journal, Vol-7, Issue-2 July-Dec-2021, ISSN 2454-3950, P.57; श्री कृष्ण दत्त भट्ट, बाबा विनोबा, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, जुलाई, 1997, आदि के अतिरिक्त अन्य विद्वतजनों द्वारा किये गये शोधालेखों की सहायता ली गयी है।

आचार्य विनोबा भावे जी का जन्म 11 सितम्बर, 1895 ई0 को महाराष्ट्र के कोंकण प्रदेश के कोलाबा जिले के पेण तहसील के गांगोदे नामक गाँव में हुआ था।[1] इनके पिता का नाम नरहरिभावे एवं माता का नाम रूक्मिणी देवी था। इनकी माँ इन्हें विन्या कहती थीं एवं 'विनोबा' नामकरण साबरमती आश्रम के उनके साथी मामा फड़के ने महाराष्ट्र के संत परम्परा के अनुरूप किया।[2] बाद मे गाँधी ने भी विनायक को विनोबा नाम से सम्बोधित कर इसकी पुष्टि कर दी।[3] इनके तीन भाई बालकृष्ण, शिवाजी, दयात्रेय थे एवं एक बहिन शान्ता बाई थी। इनके पिता बड़ौदा में नौकरी करते थे अतएव इनका प्रारम्भिक जीवन अपने दादा शम्भुराव भावे के पास गंगोदा में बीता। गंगोदा छोटा सा गांव था, पर यहाँ के सामान्य जीवन शैली पर महाराष्ट्र के महान सन्तों ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, नामदेव एवं एकनाथ की शिक्षाओं का प्रभाव था। स्वंय विनोबा जी के शब्दों में– "इस गाँव की महिलायें सुबह के कार्यो को करते–करते अभंग (इन महान संतो के भक्तिपूर्ण गीतों) को गाया करती थीं, मेरी माँ इन महान सन्तों की भक्तिपूर्ण रचनाओं के साथ–साथ

कर्नाटक के पुरन्दर दास के भजनों को भी गाती थी।[4]

आचार्य विनोबा भावे के व्यक्तित्व पर उनकी माता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। एक बार उन्होंने कहा है कि ''मेरे मन पर मां के जो संस्कार है, उसकी कोई उपमा नहीं है, मुझे अनेक सत्यपुरूषों की संगति प्राप्त हुई है, अनेक महापुरूषों के ग्रंथ मैने पढ़ा है, जो अनुभव से भरे है उन सबको मैं एक पलड़े में रखता हूँ और माँ से मुझे साक्षात् भक्ति का शिक्षण मिला है उसे दूसरे पलड़े में रखकर तौलता हूँ, तो यह दूसरा पलड़ा भारी होता है।[5]

1903 ई0 में विनोबा अपने पिता के साथ बड़ौदा आ गये और यही पर इसी वर्ष बड़ौदा के स्कूल में कक्षा तीन में भर्ती हो गये। उन्होंने 1913 में हाईस्कूल उत्तीर्ण हुए एवं बड़ौदा कालेज में इण्टरमीडिएट हेतु प्रवेश लिए। पिता के सानिध्य में गणित और अंग्रेजी का अभ्यास किये। साथ ही संस्कृत, मराठी भाषा में भी दक्षता प्राप्त किये। महाराष्ट्र के संत साहित्य को कंठस्थ करने के अलावा विनोबा ने तुलसीदास की रामचरित मानस तथा विनय पत्रिका, शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्रभाष्य तथा श्रीमद् भागवत गीता का गूढ़ अध्ययन किया था। उपनिषदों, स्मृतियों तथा योगदर्शन का ज्ञान उन्हें संतो की श्रेणी में खड़ा करता है।[6] बड़ौदा की सेन्ट्रल लाइब्रेरी में उन्होंने मिल्टन बड्सवर्थ, बाउनिंग, लियो टालस्टाय एवं विलियम शेक्सपियर के साहित्य का भरपूर अध्ययन किया था।[7] लोक सेवा की इच्छा से 1914 में उन्होंने अपने कुछ मित्रों के साथ 'विद्यार्थी मण्डल' स्थापित किया।[8] शिवाजी जयंती एवं दास नवमी उत्सव उन्होंने विधिवत मनाना शुरू किया। वहाँ अलग–अलग विषयों में अध्ययन चर्चा, संत साहित्य, देशप्रेम, महान् व्यक्तियों के चरित्रय, विकास एवं ज्वलंत राष्ट्रीय विषयों पर चर्चा होती थी। विनोबा के शब्दों में मेरा सार्वजनिक जीवन इसी विद्यार्थी मण्डल से शुरू हुआ। बाद में ग्राम सेवा मण्डल (1935) की स्थापना का सूत्र भी इसी से जुड़ा था।[9]

25 मार्च, 1916 को विनोबा इंटर की परीक्षा देने के लिए बड़ौदा से बम्बई के लिए रवाना हुए, लेकिन बीच मार्ग में अपने दो मित्रों–बेडरेकर और तगारे के साथ सूरत में उतर गये। अपने पिता जी को एक पत्र लिखं और अपने मित्र गोपालराव काले को पिताजी को देने के लिए कहे। उन्होंने पत्र में लिखा–मैं परीक्षा देने बम्बई जाने के बदलें कहीं और ही जा रहा हूँ। आपको यह विश्वास तो होगा ही कि मैं कहीं भी क्यों न जाऊ, मेरे हाथों कोई अनैतिक काम नहीं होगा।[10] गृह त्याग से पूर्व उन्होंने मैट्रिक के प्रमाणपत्र जला दिये थे। विनोबा जी काशी दो कारणों से आएं–प्रथम काशी संस्कृत अध्ययन का केन्द्र था। द्वितीय बंगाल और हिमालय दोनों के बीच पड़ती थी। विनोबा ने कहा– मैं छोटा सा था तभी से मेरा ध्यान हिमालय और बंगाल की ओर खिंचा हुआ था। बंगाल की वंदेमातरम् की क्रान्ति भावना और हिमालय के ज्ञान योग के प्रति आकर्षण था। हिमालय और बंगाल दोनों के रास्ते में काशी पड़ती थी। कर्मयोग से मैं वहां आ पहुँचा।[11]

विनोबा भावे जी अपने मन–मस्तिष्क में कर्मयोग की लालसा लेकर काशी पहुँचें। विनोबा भावे जी के जीवन की ऐतिहासिक यात्रा का श्रीगणेश हो गया। संयोग से उस समय महात्मा गाँधी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना अवसर पर आये हुए थे। महात्मा गाँधी के ओजस्वी भाषण का विनोबा के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। विनोबा के ही शब्दों में, ''गाँधी जी ने जो ओजस्वी भाषण दिया, उसका विवरण अखबार में पढ़ा। उसका मुझ पर भारी असर हुआ। मुझे लगा– यह पुरूष ऐसा है जो देश की राजनीतिक स्वतंत्रता तथा आत्मिक विकास दोनों साथ–साथ चाहता है। मुझें यही पसन्द था.................. ....मेरे पैर महात्मा गाँधी की तरफ मुड़ें................ गाँधी जी के पास मुझे हिमालय की शांति भी मिली और बंगाल की क्रांति भी। वहाँ जो पाया उसमें क्रांति और शान्ति दोनों का अपूर्व संगम हुआ था।[12] 7 जून, 1916 के दिन विनोबा भावे ने पहली बार गाँधी जी के दर्शन किए।[13] उस समय गाँधी जी अहमदाबाद के कोचरब आश्रम में थे। गांधी जी और विनोबा जी बड़ी आत्मियता के साथ मिले।

महात्मा गाँधी को विनोबा भावे की अद्‌भूत प्रतिभा एवं आध्यात्मिक दक्षता पर बहुत गर्व था। 1917 में सी0एफ0 एण्डूज ने विनोबा का परिचय देते हुए कहाँ था, ''ये ऐसी विभूतियों में से है जो आश्रम से वरदान पाने नहीं बल्कि वरदान देने के लिए आते है।[14] इसलिए तो उनके पिता को 1916 में गांधी जी ने पत्र लिखकर कहे थे ''उन्होंने अपनी इस नाजुक अवस्था में ही आध्यात्मिकता और प्रयास की इस ऊंचाई को प्राप्त किया है जिसे प्राप्त करने में मुझे वर्षो का कठिन परिश्रम लगा।[15]

1917 से साबरमती आश्रम में गांधी जी ने

विनोबा को प्रतिदिन प्रार्थना के बाद गीता पर बोलने के लिए कहा था। विनोबा भावे कहे थे– गांधी जी स्वयं वही बैठते, इसलिए संयमपूर्वक बोलने की आदत पड़ गयी।[16]

सेठ जमनालाल बजाज साबरमती आश्रम की तर्ज पर वर्धा में भी एक आश्रम खोलने की बात गाँधी जी से हमेशा कहते थे। गाँधी जी ने बजाज जी का मान रखने के लिए विनोबा को वर्धा जाने की बात कहीं। 8 अप्रैल, 1921 को विनोबा वर्धा पहुँचे। वर्धा में 30–35 वर्षों के कठिन परिश्रम के फलस्वरूप विनोबा को ज्ञान एवं कर्मयोग में सफलता मिली। उन्होंने गाँधी जी द्वारा आयोजित हर सामाजिक कार्य को पूरे उत्साह एवं निष्ठा के साथ सम्पन्न किया जैसे–खादी, स्वराज्य, अश्पृश्यता निवारण, शराब बन्दी आदि विविध रचनात्मक कार्यो को व्यावहारिक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[17]

1923 में उन्होंने ''महाराष्ट्र धर्म'' नामक मासिक पत्रिका निकालनी शुरू की जिसमें वे वेदान्त के महत्व और उपयोगिता के ऊपर निबंध लिखते रहे। विनोबा भावे सत्याग्रही के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिये थे। नागपुर के झंडा सत्याग्रह (1923) में विनोबा जी ने सर्वप्रथम भाग लिया।[18] उन्हें नागपुर जेल भेजा गया और वहाँ से अकोला जेल में भेजा गया। विनोबा जी ने अकोला जेल में राजनैतिक कैदी जो काम नहीं करते थे उनको गीता का संदेश दिया कि ''बिना परिश्रम करके रोटी खाना पाप है।[19] यहाँ से वह दो माह बाद जेल से छूट जाते हैं।

1925–26 में विनोबा भावे जी का द्वितीय सत्याग्रह वाइकोम (केरल) सत्याग्रह था। हरिजनों को मंदिर से निकलने वाले मार्ग से गुजरना निषिद्ध था। गाँधी जी उन्हें वहाँ पर भेंजा

12 मार्च, 1930 में गाँधी जी के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह हेतु डाण्डी मार्च शुरू किया गया जिसमें विनोबा भावे ने सक्रिय रूप से भाग लिए। इस बार उन्हें धुलिया जेल में रखा गया। राजगोपालाचारी, जिन्हें राजा जी कहा जाता था, उन्होंने विनोबा भावे के विषय में 'यंग इण्डिया' में लिखा था कि ''विनोबा को देखिए देवदूत जैसी पवित्रता है उसमें। आत्म विद्वता, तत्वज्ञान और धर्म के उच्च्य शिखरों पर विराजमान है वह। उसकी आत्मा ने इतनी विनम्रता ग्रहण कर ली है कि कोई ब्रिटिश अधिकारी यदि पहचानता नहीं तो उसे विनोवा की महानता का अंदाजा नहीं लगा सकता।[20]

1940 में जब व्यक्तिगत सत्याग्रह हुआ तो विनोबा को ही प्रथम सत्याग्रही चुना गया क्योंकि गाँधी परिवार में विनोबा ही पहले ऐसे व्यक्ति थे जिनके जीवन के अंग–प्रत्यंग में अहिंसा एवं सत्याग्रह की निष्ठा सबसे ज्यादा थी।[21] सरकार ने युद्ध विरोधी भाषण देने के कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया। जेल मे ही ''स्वराजय शास्त्र'' नामक पुस्तक लिखी।[22]

सन् 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन के दौरान विनोबा पहले ही दिन गिरफ्तार कर लिए गये। तीन वर्ष जेल में बंद रहे। प्रारम्भ में वे वेलोर (दक्षिण भारत) और बाद में शिवनी (मध्य प्रदेश) के जेल में रखे गये।[23] 1945 में अन्य के साथ इन्हें भी रिहा कर दिया गया।

विनोबा जी स्वतंत्र भारत में गोवध निषेध हेतु सत्याग्रह किया। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ परन्तु उसके कुछ ही दिन बाद 30 जनवरी, 1948 को गाँधी जी दुनिया से विदा हो गये। गांधी जी के अधूरे कार्यो को पूरा करने की जिम्मेदारी विनोबा के कन्धों पर आ गयी। 13 मार्च, 1948 को सेवाग्राम सम्मेलन का आयोजन किया गया। जहाँ पर सर्वोदय समाज की स्थापना किया गया। सर्वोदय का पहला सम्मेलन मार्च, 1949 में मध्यप्रदेश के 'राऊ (इंदौर) में हुआ जिसमें कहा गया कि सत्य और अंहिसा पर आधारित एक ऐसे वर्ग–विहीन समाज का निर्माण किया जाये जिसमें मनुष्य शोषण, उत्पीड़न, अन्याय और अनाचार से पूर्णतया मुक्त हो। 1951 में शिवराम पल्ली (हैदराबाद) के तीसरे सर्वोदय सम्मेलन को संबोधित करते हुए विनोबा ने कहाँ, ''स्वराज्य के बाद हमें जो काम करना है, वह बहुत ही गहरा और कठीन है। वह समाज की नीव में चुने जाने का काम है। अब हमें समाजिक और आर्थिक क्रांति का काम अपने हाथ में लेना है।[24]

विनोबा भावे ने सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए जो क्रांतिकारी रचनात्मक कदम उठाए उसमें भूदान यज्ञ, ग्राम दान, प्रखण्ड दान, जिलादान, राज्यदान, सम्पति दान, श्रम दान, बुद्धिदान, जीवन दान आदि प्रमुख है। विनोबा से प्रभावित होकर सर्वप्रथम 18 अप्रैल, 1951 को तेलगांना के पोचमपल्ली नामक गाँव में श्री राम चन्द्र रेडडी नामक एक जमींदार ने अपनी 100 एकड़ जमीन भूमिदान के रूप में प्रदान किया।[25]

प्राप्त जमीन को वहाँ के भूमिहीन हरिजन भाइयों में बांट दिया गया और इस तरह भूदान की गंगा बह निकली। विनोबा के इस मंत्र ''सबै भूमि

गोपाल की'' से प्रभावित होकर के मंगरौठ (हमीरपुर जिला) गाँव वालों ने 24 मई, 1952 को अपने गाँव की सब जमीन सौंप दी[26] और इस तरह ग्राम दान आंदोलन की शुरूआत हुई। वस्तुतः विनोबा ने देशभर में भूदान, ग्रामदान आदि के माध्यम से लाखों एकड़ जमीन प्राप्त कर उसे भूमिहीनों में वितरीत करने का पुनीत कार्य किया।[27]

भारत के महान दार्शनिक एवं शिक्षाविद् डॉ0 राधाकृष्णन् ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में भूदान को 'सहमति से क्रांति' की संज्ञा दी है। 23 अक्टूबर, 1952 को पाटलिपुत्र नगर में सम्पति आंदोलन प्रारम्भ करते हुए विनोवा ने कहाँ कि सम्पति दान, भूदान यज्ञ की पूर्ति के लिए आवश्यक है। 20 जनवरी, 1953 की उड़ीसा कटक जिले में मानपुर पहला ग्राम था, जिसे दान के रूप में दिया गया।

3 अगस्त, 1957 को विनोबा ने देश में फैली अशांति को मिटाने के लिए शांति सेना खड़ी करने की बात कहीं जिसका कार्य हर तरह के झगड़ों को मिटाना तथा लड़ने वालों को प्रेम से जोड़ना यानि दुश्मनों को दोस्त बनाना होना चाहिए।[28]

विनोबा भावे ने चम्बल के डाकुओं को अहिंसा का पाठ पढ़ाया जिनसे प्रभावित होकर ''कनेरा ग्राम में 19 मई, 1960 को बन्दूकें नीचे रखकर डाकुओं ने आत्म समर्पण कर दिया।[29] जिस प्रकार विनोवा जी ने उनकी आत्मा को स्पर्श किया उससे यह सिद्ध हुआ कि अहिंसा में मनुष्य को ऊपर उठाने की अलौकिक क्षमता है। हृदय परिवर्तन का यह अलौकिक उदाहरण है।[30]

1962 में असम में दंगे को शांत कराने तथा वहाँ प्रेम और सद्भाव का वातावरण बनाने में विनोबा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और आसाम की जनता को संदेश दिया–

'आमार मंत्र जय जगत। आमार तंत्र ग्रामदान'।[31]

5 सितम्बर, 1962 से 21 सितम्बर 1962 तक विनोबा ने पूर्वी पाकिस्तान में प्रेम और करूणा का संदेश दिया। वहां विनोबा को भूदान में 175 बीघा जमीन मिलीं जो वही, उसी समय, बांट दी गई।[32]

20 से 29 अक्टूबर, 1969 को राजगृह में जो सर्वोदय सम्मेलन हुआ, उसमें बिहार दान की घोषणा हुई। 7 जून, 1970 को विनोबा पवनार के ब्रह्म विद्या मंदिर पहुँचे। स्थायी रूप से निवास का निश्चय किया। 7 अक्टूबर, 1970 को क्षेत्र संयास की घोषणा की।[33]

25 दिसम्बर, 1975 को विनोबा भावे का मौन व्रत समाप्त होने लगा था। पवनार में भव्य आयोजन किया गया। उसी दिन आपात काल के छः महीने पूरे होने वाले थे। उस दिन तक आपातकाल की समाप्ति की घोषणा की जाय, ऐसा संदेश विनोबा ने प्रधानमंत्री को भेजा।[34]

25 फरवरी, 1976 को प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से गो–वध निषेध की प्रार्थना की। 11 सितम्बर, 1976 से आमरण अनशन की घोषणा की। केरल और बंगाल में गाय हत्या के विरोध में 22 अप्रैल, 1979 को आमरण अनशन प्रारंभ किया। 26 अप्रैल, को प्रधानमंत्री मोरारजी भाई के आश्वासन पर अनशन समाप्त किया।[35]

विनोबा जी ने गाँधी जी के मार्गदर्शन को स्वीकार करके उनके मरणोंपरान्त समाज सुधार एवं राष्ट्र निर्माण के लिए जीवन पर्यन्त उत्कृष्ठ कार्य किये। नारायण देसाई ने विनोबा भावे के बारे में कहा–''यहाँ एकादश व्रत का पालन कर योगी सा जीवन प्राप्त किया तो दूसरी ओर आजादी के लिए, सत्याग्रह दरिद्र नारायन के लिए तप–तितिक्षामय सादा जीवन बिता, ऋषि खेती, कांचन, मोह मुक्ति के प्रयोग कर भूदानादि यज्ञ द्वारा धर्म चक्र प्रवर्तन कर बागियों के आत्मसमर्पण द्वारा जुर्म के क्षेत्र में समाजिक क्रांति का मंगलाचरण किया।[36] इस महान आध्यात्मिक संत ने अपने शरीर का एकमात्र उपयोग मानवता की सेवा एवं राष्ट्र निर्माण के लिए किया। अंत में अपने गन्तव्य को प्राप्त कर मानव शरीर से पलायन कर परमसाम्य को प्राप्त किया।''[37] 4 नवम्बर, 1982 को विनोबा को बुखार आया और अंततः 15 नवम्बर, 1982 को विनोबा रामहरि कहते हुए अनन्त की ओर चल दिये।[38]

निष्कर्ष

आचार्य विनोबा भावे ने अपना सम्पूर्ण जीवन महात्मा गाँधी जी से अभिप्रेरित होकर अपने जीवन के अंतिम पड़ाव तक जन कल्याण में लगा दिया। समाज सुधार से लेकर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी गौरवमयी उपस्थिति अपने विचारों एवं कार्यो दोनों प्रकार से दी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि विनोबा भावे का व्यक्तित्व और कृतित्व उनके ऐतिहासिक योगदान को प्रतिस्थापित करता है और देश हमेंशा उनका ऋणि रहेगा।

संदर्भ सूची :

1. शाह, कांति, विनोबा : जीवन और कार्य, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, द्वि0 सं0 1984, पृष्ठ–1
2. विश्वनाथ टंडन, 'आचार्य विनोबा भावे', पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ–1
3. विश्वनाथ टंडन, पूर्वोक्त, पृष्ठ–20
4. पूर्वोक्त, पृष्ठ–3
5. विनोबा साहित्य, खण्ड–19, धर्मामृत और चरितामृत, कान्तिशाह, परमधाम प्र. पवनार (वर्धा), लक्ष्मीनारायण देवस्थान (वर्धा), पृष्ठ–188
6. सुरेश राम, विनोबा एण्ड हिजमिशन, सर्व सेवा संघ, काशी 1962, तीसरा सं. पृष्ठ–10–15
7. विश्वनाथ टंडन, पूर्वोक्त, पृष्ठ–11
8. पूर्वोक्त
9. विनोबा साहित्य, खण्ड–19, पूर्वोक्त, पृष्ठ–208
10. कालिन्दी, संपादित, "अहिंसा की तलाश" विनोबा की जीवन झांकी, विनोबा के शब्दों में सत् साहित्य सहयोगी संघ, गांधी दर्शन, नुमाईश मैदान, हैदराबाद– 500001 (आन्ध्र प्रदेश), फरवरी 1997, तृतीय संस्करण, पृष्ठ–46
11. विनोबा साहित्य, खण्ड–19, पूर्वोक्त, पृष्ठ–217
12. शाह, कांतिभाई, संपादित, गाँधी : जैसा देखा–समझा विनोबा ने, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1983, पृष्ठ–9
13. शाह, कांति, विनोबाः जीवन और कार्य, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1984, पृष्ठ–19
14. Vinoba, his life and work, Sriman Narayan Prakashan, Bombay, 1967, P.4
15. Vinoba, his life and work, P.36
16. विनोबा, निर्मला देशपांडे अनु. गोपाल शंकरन, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया एण्ड ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ–14
17. शुक्ल, राकेश कुमारः शोध प्रबन्ध, भारत में सर्वोदय की अवधारणा (विनोबा भावे के विशेष संदर्भ में), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2004, अ0–1, पृ0–16
18. विश्वनाथ टंडन, पूर्वोक्त, पृष्ठ–25
19. पूर्वोक्त
20. ललित कुमार, विनोबा भावेः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पंखुडी, Peer Reviewed/Refereed Research Journal, Vol-7, Issue-2 July-Dec- 2021, P.57
21. शाह, कांति, विनोबाः जीवन और कार्य, पृ0–41
22. नारायण, श्रीमन, 'ऋषि विनोबा जीवन और कार्य, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पृष्ठ–6
23. पूर्वोक्त, पृष्ठ–7
24. शाह, कांति, विनोबाः जीवन और कार्य, पृ0 52
25. भट्ट, श्री कृष्ण दत्त, बाबा विनोबा, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, जुलाई, 1997, 11वां संस्करण, पृष्ठ–51
26. शाह, कांति, विनोबाः जीवन और कार्य, पृ0 63
27. शुक्ल, राकेश कुमार, शोध प्रबंध : भारत में सर्वोदय की अवधारणा (विनोवा भावे के विशेष संदर्भ में), पृष्ठ–19
28. भट्ट, श्री कृष्ण दत्त, बाबा विनोबा, पृष्ठ 62
29. विनोबा साहित्य, खण्ड–19, पूर्वोक्त, पृष्ठ–304
30. सिंह, सुनिता, शोध प्रबंध : आचार्य विनोबा भावे का राजनीतिक चिन्तन–एक समीक्षात्मक अध्ययन, बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, 2000, अध्याय–1
31. भट्ट, श्री कृष्ण दत्त, बाबा विनोबा, पृष्ठ–67
32. शाह, कांति, विनोबाः जीवन और कार्य, पृष्ठ–110
33. शुक्ल, राकेश कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ–20
34. गजेन्द्र कुमार, शोध प्रबंध : राष्ट्रीय आंदोलन और विनोबा भावे : एक अध्ययन, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा, 2004, पृष्ठ–152
35. शुक्ल, राकेश कुमार, पृष्ठ–20–21
36. सिंह, सुनिता, पूर्वोक्त, अ0–1; द्रष्टव्य, नरायन देसाई, 'सूर्य की रथयात्रा' गांधी मार्ग, जनवरी, 1983, पृष्ठ 73–74
37. सिंह, सुनिता, पूर्वोक्त, अ0–1; नरगोलकर, बसन्त, ''द क्रीड ऑफ विनोबा'' भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1995, पृष्ठ 182
38. भट्ट, श्री कृष्ण दत्त, बाबा विनोबा, पृष्ठ–71

Assistant Professor,
Dept. of History
Govt. Degree College, Margubpur,
Roorkee, Haridwar, Uttarakhand

6

अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में सांस्कृतिक संघर्ष और संक्रमण

मयूरिका मोहन[1]
प्रो. गीता कपिल[2]

मॉरिशस के साहित्यकार अभिमन्यु अनत का हिंदी प्रवासी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनका साहित्य न केवल सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से अपितु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी समृद्ध है । श्री अनत की लेखनी का आरम्भ समाज की गहरी समझ और भारतीय संस्कृति के बदलते रुपों से हुआ। वैसे तो उनका समस्त साहित्य ही समाज की जटिलताओं और विभिन्न वर्गों के संघर्षों का दर्पण है, किन्तु जिस प्रकार उन्होंने वस्तुगत रूप से सांस्कृतिक मूल्यों को चित्रित किया है वह निश्चित ही उनके साहित्य की महत्ता को बढा देता है ।

सांस्कृतिक चेतना का संबंध समाज के भीतर प्रचलित परम्पराओं, मान्यताओं, जीवनशैली एवं संघर्षों से है, जो समाज की पहचान और उसकी धारा को परिभाषित करती है । सांस्कृतिक चेतना किसी भी समाज की आत्मा होती है । यह केवल परम्पराओं को संरक्षित करने तक सीमित नहीं होती, अपितु समाज को नए बदलावों के साथ अपनी जड़ों से जोड़े रखने में मदद करती है। मॉरिशस की धरती पर विभिन्न संस्कृति के लोगों के आगमन से वहाँ एक मिलीजुली संस्कृति का विकास हुआ। यद्यपि इस प्रक्रिया में सभी ने अपनी संस्कृति की पहचान को बचाए रखने के अनेक प्रयास किए किन्तु एक संस्कृति से अलग संस्कृति के संपर्क में आने पर संघर्ष का दूसरा रुप सामने आता है। यह संघर्ष चाहे अपनी संस्कृति से अलग संस्कृति अपनाने का हो, चाहे अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने का। दो या अधिक संस्कृतियों के मिलने से संघर्ष होना स्वाभाविक है ।

मनुष्य के एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन और प्रवास से उसकी संस्कृति प्रभावित होती है। प्रवास में अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखना चुनौतीपूर्ण होता है और कभी-कभी सामाजिक अजनबीपन, द्वंद्व व नएपन में व्यक्ति विवश होकर दूसरी संस्कृति को भी अपनाने के लिए तैयार हो जाता है । ऐसा न करने पर वह संघर्ष करता है, नई जगह पर अपनी संस्कृति को स्थापित करने का प्रयास करता है और नई पीढ़ी के सामने भी फिर वही संघर्ष खड़ा होता है । उनके सामने भी दो संस्कृतियाँ हैं, एक जिससे उनके माता-पिता का विश्वास जुड़ा होता है तथा दूसरी वह जिसे वे अपने भौगोलिक परिवेश से प्राप्त करते हैं। संस्कृति समस्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों; नैतिक, व्यवहारिक जीवन के साथ साहित्य, कला, भाषा तथा दैनिक क्रियाकलापों में परिलक्षित होती है। मानव-जीवन का उत्कर्ष उसकी संस्कृति में झलकता है। अभिमन्यु अनत के औपन्यासिक पात्रों में यह झलक मिलती है। उनके उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना मुखर है। उन्होंने मॉरिशस के प्रवासी भारतीय समाज की जटिलताओं, परम्पराओं और आधुनिक मूल्यों के बीच संघर्ष एवं मानवीय संवेदनाओं को अपनी अभिव्यक्ति से मूर्त कर दिया है। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने भारतीय संस्कृति की गहरी समझ और उसके विकास पर बल दिया है, विशेषकर ऐसे समय में जब पारम्परिक मूल्य और आधुनिकता के बीच टकराव होता है। समाज की पारम्परिक धारा और आधुनिकता के बीच संघर्ष होता है और इससे जूझते व्यक्ति के इन दोनों के मध्य संतुलन साधने का प्रयास, यह अनत के उपन्यासों में स्पष्ट रुप से दर्शाया गया है ।

मॉरिशस मिलीजुली जातियों व वर्णों का देश है। ऐतिहासिक कारणों से वहाँ बहुसांस्कृतिक परिवेश का विकास हुआ। सभी की अपनी पृथक सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं । सभी संस्कृतियों ने एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डाला । अनत ने अपने उपन्यास “हम प्रवासी” में चालीस दिवसीय उस जहाजी यात्रा का विशद् चित्रण किया है, जिसके माध्यम से भारतीयों को मॉरिशस ले जाया गया। इस यात्रा का अनुभव

प्रवासियों के लिए किसी बुरे स्वप्न से कम नहीं था । इस यात्रा में उनके साथ पशुवत व्यवहार किया गया । भोजन एवं निद्रा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से भी उन्हें वंचित रखा गया। अमानवीयता की पराकाष्ठा तो यह थी कि अस्वस्थ होने पर उपचार करने के स्थान पर उन्हें तड़प कर मरने के लिए छोड़ दिया जाता और मृत्यु हो जाने पर शवों को बड़ी ही निर्ममता से सागर में फेंक दिया जाता था। जहाज की इस दुर्गम यात्रा और रोग की विकराल स्थिति के बावजूद 'मारीच द्वीप' पर पहुँचे भारतीयों का एक ही सपना होता था कि चाहे जितनी भी कड़ी मेहनत करनी पड़े, जितना भी पसीना बहाना पड़े पर हमारी संस्कृति, हमारी पहचान बनी रहे । हम प्रवासी उपन्यास का यह गीत इसी भाव की अभिव्यक्ति करता है -

"सहली जा एक संग जहजवा के सब दुखवा
बंटली जा संगे-संगे समन्दर के सब बिपतवा
हम अयली जा भैया एक देश के चार कोनवा से
अब जिंदगानी बीती भैया हथ परदेसवा में
बनल रही मगर मंगवा में सिन्दूर-हथवा में मेहंदी
चमके माथे पे बिंदी, सुहागन के गले में ताली
आपस में पिरो के रामा अपन माथे के पसीनवा
रोपे के बाटे धरती में अपन बूंद-बूंद पसीनवा
उगाय के बाटे तन मन लगा के गन्ना के खेतवा"[1]

भारतीय संस्कृति में कर्तव्य पालन की महत्ता सर्वोपरि है। उपर्युक्त गीत की अंतिम पंक्तियों में प्रवासी भारतीयों के इसी 'कर्तव्य पालन' भाव के प्रति आस्था प्रकट हुई है । परिस्थितियाँ कितनी ही प्रतिकूल हो, कितना भी विकट कष्ट क्यों न हो, अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए । मॉरिशस में हज़ारों-लाखों अमानवीय यातनाओं एवं आर्थिक कष्ट सहने के पश्चात भी इन प्रवासी भारतीयों की आत्मशक्ति खंडित नहीं हुई क्योंकि वे अपने साथ भारतीय धर्म, संस्कृति और भाषा की अमूल्य निधि लेकर गए थे। "मानस की चौपाईयाँ, कबीर की साखियाँ, देवी-देवताओं की स्तुतियाँ, पूजा-पाठ के मन्त्र, श्लोक नीति और आल्हा-ऊदल के जोशीले गान, कजरी, बिरहा, फाग और चैती के गीतों की धुनें तो उन्हें बिल्कुल कंठस्थ थीं हीं, उनकी फटी-पुरानी पोटलियों एवं गठरियों में रामायण, हनुमान चालीसा, गीता, तोता-मैना, सत्यनारायण कथा की पोथियाँ भी उनके साथ ही उस विदेशी भूमि पर गई थीं ।"[2] उनकी पोटलियों में रखा 'रामचरितमानस' पोथी मात्र नहीं बल्कि भावी यात्रा के लिए उनका संबल थी । कहीं न कहीं वे स्वयं की पीड़ा से राम की पीड़ा का भी अनुभव कर पा रहे थे । ऐसा कहा जा सकता है कि राम की कथा के साथ उनका साधारणीकरण हो गया था । यह सभी प्रवासी अपनी-अपनी अयोध्या पीछे छोड़ आए थे । सभी को इन जंगलों में अपनी-अपनी पर्णकुटी का निर्माण करना पड़ा था। राक्षसों से इनका भी निरंतर सामना होता रहता था। वास्तव में गन्ने की कोठियों के मालिक उनके सेवक व हितैषी भारतीयों के लिए रावण व राक्षसों के समान ही थे । जहाँ इनकी अपनी सीता भी सुरक्षित नहीं थीं । उसका कथित रावणों के द्वारा हरण होता ही रहता था । इस प्रकार रामायण के सम्पूर्ण सादृश्य-विधान इनका प्रतिदिन का प्रत्यक्ष अनुभव था ।

वर्तमान मॉरिशस में ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, क्रियोल सभी धर्मों के लोग समतापूर्वक रहते हैं, लेकिन प्रारंभिक स्थिति ऐसी नहीं थी । हिन्दू धर्म के प्रति तत्कालीन शासकों का व्यवहार अत्यंत कटु था । हिन्दुओं को बलपूर्वक ईसाई धर्म अपनाने के लिए विवश किया जाता था । 'लाल पसीना' उपन्यास के अंतर्गत लेखक ने हिन्दू मजदूरों की निरीह स्थिति का वर्णन किया है कि किस प्रकार उन्हें बलात ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए कोड़ों से पीटा जाता था । उन्हें अन्य प्रकार से भी प्रताड़ित किया जाता था । ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी भारतीयों ने अपने धर्म व संस्कृति को सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास किया क्योंकि धर्म परिवर्तन उनके लिए अपनी आत्मा को बंधक बनाने के समान था। मॉरिशस में विद्यमान प्रवासी भारतीयों की धार्मिक स्थिति के संदर्भ में

[1] अनत, अभिमन्यु (2004), हम प्रवासी, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, पृ. 127

[2] गोयनका, कमल किशोर (1988), सागर पार भारतीय संस्कृति और हिंदी, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 45

पंडित आत्माराम ने लिखा है कि "हर्ष और आनंद इस बात पर होना चाहिए कि वैसी अधोगति के समय में भी कुलियों ने सनातन धर्म की भावनाओं का त्याग नहीं किया । वे ईसाई या मुसलमान नहीं बने । अपना हिंदुत्व कायम रखा और अपनी मातृभूमि हिंदुस्तान देश को ही आदर्श मानकर यह स्पष्ट रीति से जाहिर कर दिया कि पांच सौ बरस तक अनेक प्रकार के दुःख, संकट, यातना और अपमान सहन करते हुए भी आज घड़ी तक हम हिन्दू के हिन्दू ही कायम रहे हैं ।"[3]

प्रवासी भारतीय अपने साथ भारतीय संस्कृति की परम्पराएँ, रीति-रिवाज, पूजा-अनुष्ठान आदि लेकर मॉरिशस गए थे । उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ इनका पालन भी किया । भारत की सदियों पुरानी मान्यता है कि 'सूखा' इंद्र देव के प्रकोप के कारण ही पड़ता है । यह मान्यता प्रवासी भारतीयों के हृदय में भी जीवित थी इसलिए प्रवासी महिलाएँ इंद्र देव की विशेष पूजा करतीं थीं । पूजा के मंत्रों के पश्चात इंद्र देव को प्रसन्न करने के लिए 'हरपवरी' गाया जाना अपनी संस्कृति के प्रति उनकी आस्था को प्रकट करता है ।

"इन्दर देवता पानी दे
पानी के मुहाल बा
धरती मैया प्यासल हवे
मेघ देवता पानी दे
देशवा में संकट बा
परजा गुहार कर दे पानी दे ।"[4]

इसी तरह गो-पालन भी भारतीय संस्कृति का एक प्रतीक है । मॉरिशस में प्रवासियों ने इस संस्कृति का भी पालन किया। 'चौथा प्राणी' उपन्यास में प्रवासियों का गाय के प्रति प्रेम देखने को मिलता है ।

परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों के अतिरिक्त अन्धविश्वास भी भारतीय समाज के प्रमुख अंग हैं । ऐसे अनेक अंधविश्वास हैं जो समाज में सदियों से चले आ रहे हैं । इसका प्रभाव मॉरिशस के प्रवासी समाज पर भी स्पष्ट रुप से दिखाई देता है । अनत ने अपने विभिन्न उपन्यासों में इन अंधविश्वासों का वर्णन किया है जैसे -'और नदी बहती रही' उपन्यास में गाँव की स्त्रियों द्वारा एक पेड़ पर सिंदूर का टीका लगाया जाता था । वह पेड़ उनके लिए पूजनीय था। ऐसा वर्णित है कि एक दिन एक पंडित उस पेड़ की जड़ में नित्य क्रिया से निवृत्त हुआ, जिसके पश्चात उसकी मृत्यु हो गई । "कहते हैं उसकी मौत के सर्टिफिकेट में डॉक्टर ने लिखा था– 'एक रहस्यमयी बीमारी'। कुछ लोग कहते हैं उसे चुड़ैल लग गई और कुछ कहते हैं कि उसने लोगों के विश्वास और श्रद्धा पर पेशाब किया था, इसलिए ऐसा हुआ। कुछ लोग उसे काली माई का प्रकोप बताते और कुछ लोगों के लिए वह घटना आज भी रहस्य है ।"[5]

अन्धविश्वास के साथ-साथ भूत-प्रेत, जादू-टोने, तंत्र-मन्त्र आदि की चर्चा भी अनत ने अपने उपन्यासों में की है । इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के अंतर्गत जिन सोलह संस्कारों की मान्यता है, उनका पालन भी मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों द्वारा किया जाता रहा है जिसका उल्लेख 'चौथा प्राणी', 'जम गया सूरज', 'लाल पसीना', 'कुहासे का दायरा' आदि उपन्यासों में मिलता है । स्वयं के मुंडन संस्कार की बात अभिमन्यु अनत ने अपने संस्मरण में बताई है। मृत्यु के पश्चात की जाने वाली रीतियाँ एवं दाह-संस्कार में भारतीय संस्कृति की पूरी छाप दिखाई देती है । उसके स्वरुप में थोड़ा बहुत अंतर अवश्य आ गया है । इसका एक दृश्य 'कुहासे का दायरा' उपन्यास में मिलता है– "घर के कोने में लकड़ी की जो खाट तैयार की गई थी, उस पर सफ़ेद कोरी चादर बिछा कर उसके बगल में लोटा उड़ेल कर रख दिया गया था और लोटे पर घी का दिया जलाया गया था । महावीर गोंसाई और सभा के कुछ लोगों ने मिलकर रात को नहलाया । तब तक धनेश दुकान से नई धोती और कमीज़ लिए आ पहुंचा

[3] विश्वनाथ, आत्माराम (1984), मॉरिशस का इतिहास, नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, पृ. 234

4 अनत, अभिमन्यु (1972), एक बीघा प्यार, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 25

[5] अनत, अभिमन्यु (1970), और नदी बहती रही, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 6

था।"[6]

त्यौहार किसी भी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा होते हैं। वे संस्कृति के विभिन्न रुपों को प्रदर्शित करते हैं। भारत की तरह मॉरिशस में भी शिवरात्रि, दीपावली, नवरात्रि एवं होली जैसे पर्व हर्षोल्लास के साथ मनाये जाते हैं। अनत ने अपने अधिकांश उपन्यासों में इनका वर्णन किया है।

प्रवासी भारतीयों ने अपनी सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखने के लिए विभिन्न कठिनाईयों का सामना किया। किन्तु उनकी नई पीढ़ी के लिए ये और अधिक चुनौतीपूर्ण था।

सिक्के का एक दूसरा वास्तविक पहलू यह भी है कि विदेशी भूमि पर जहाँ विभिन्न संस्कृति के लोग साथ में रह रहे हों वहाँ अपनी संस्कृति को सुरक्षित रख पाना सरल नहीं होता। भारत व अन्य देशों की तरह मॉरिशस में भी अंग्रेज शासकों ने लोगों को अपनी संस्कृति में ढालने का प्रयास किया। उन्हें ज्ञात था कि सांस्कृतिक निष्ठा समाप्त करके ही लोगों की अस्मिता समाप्त की जा सकती है तथा उन्हें नए ढाँचे में ढाला जा सकता है। दास प्रथा तो समाप्त हो गई थी, किन्तु 'कल्चरल हाईजैकिंग' शोषण का नया आविष्कार बन गया था।

इस प्रकार प्रवासी भारतीयों ने विसंस्कृतिकरण से अपनी संस्कृति को बचाए रखने का हर संभव प्रयास किया और सफल भी हुए परन्तु स्वातंत्र्योतर मॉरिशस में उनकी नई पीढ़ी इस तूफ़ान का सामना नहीं कर पायी। पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध के आकर्षण से बच पाना उनके लिए असंभव था। पाश्चात्य संस्कृति को आधुनिकता का नाम देकर, उसे अपनाने के लिए लोगों को प्रेरित किया जाता रहा। अनत ने अपने उपन्यासों में पूर्व तथा पश्चिम के सांस्कृतिक विरोधाभास से उत्पन्न संघर्ष की विभिन्न परतों को उकेरा है। उपन्यास 'अपना मन उपवन' में गोपी महतो रामचरण से कहता है– "बड़ों का न कोई आदर, न कोई राम-सलाम। ये लोग जा कहाँ रहे हैं ? बड़ों के सामने सिगरेट तो दूर की बात रही, ये चौदह पंद्रह साल के लड़के बीयर तक पीने से नहीं शर्माते। क्या ऐसा करके ये अपने को आधुनिक बताना चाहते हैं ?"[7] मॉरिशस में युवा वर्ग पर पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव तथा उसके अन्धानुकरण के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं जैसे फिजूलखर्ची, फैशनपरस्ती, देखा-देखी की प्रवृत्ति आदि का चित्रण लेखक ने अपने उपन्यासों में किया है। युवा वर्ग के निरंतर हो रहे चारित्रिक पतन के प्रति अनत ने चिंता व दुःख प्रकट किया है।

'अस्ति-अस्तु' उपन्यास में चरित्रहीनता, स्वार्थ, भेदभाव, छल-कपट, धोखा-धड़ी, मार-पीट, अविश्वास, अत्याचार, शोषण के कारण हो रहे सांस्कृतिक ह्रास के प्रति चिंता प्रकट करते हुए भूपेन्द्र की माँ कहती है "आर्थिक प्रगति तो बेशुमार हुई, आधुनिक तो हम बहुत बने, लेकिन हमारे आचरण, हमारे कुछ मूल्य, कुछ रिश्ते खंडित होते गए।.......बड़ों के प्रति आदर, आपसी सहयोग, संस्कृति तथा भाईचारे जैसे मूल्यों का आज अवमूल्यन हो गया है। उनकी जगह ले ली है धन के पीछे दौड़ने की प्रवृति ने, दूसरों की नकल, ईर्ष्या और नफ़रत ने।"[8]

सांस्कृतिक संघर्ष का प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। मॉरिशस एक बहुभाषी देश है, वहाँ हिंदी के साथ साथ अंग्रेजी, फ्रेंच, क्रिओली आदि भाषाओं का प्रचलन है, किन्तु हिंदी को प्रारंभ से लेकर आज तक अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ा है। अन्य भाषाओं की तुलना में उसे उपेक्षा का सामना करना पड़ा। अनत ने स्वयं हिंदी को उसका स्थान दिलाने के लिए अत्यधिक संघर्ष किया, हिंदी की स्थिति सुधारने में उनकी भूमिका सराहनीय है। 'तपती दोपहर' व 'पगडंडी नहीं मरती' उपन्यासों के पात्र विभिन्न प्रकार की समस्या का सामना करते हुए अपनी भाषा की अस्मिता एवं गरिमा की रक्षा के लिए संघर्षरत दिखाई

---

[6] अनत, अभिमन्यु (1988), कुहासे का दायरा, दिल्ली : किताब घर प्रकाशन, पृ. 87

[7] अनत, अभिमन्यु (1990), अपना मन उपवन, दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, पृ. 245

[8] अनत, अभिमन्यु (2003), अस्ति-अस्तु, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, पृ. 128

पड़ते हैं।

पुरानी एवं नवीन पीढ़ी की विचारधारा में सदैव से ही अंतर देखने को मिलता आया है। समय की परिवर्तनशीलता के कारण यह स्वाभाविक भी है। यदि यह परिवर्तन सकारात्मक रुप में हो तो समाज को एक नई दिशा मिल सकती है पर यदि नकारात्मक रुप में हो तो समाज दिग्भ्रमित हो पतन के मार्ग पर भी अग्रसर हो सकता है। वर्तमान मॉरिशस में नई व पुरानी पीढ़ी के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। उनके विचारों में मतैक्य नहीं है। नई पीढ़ी पर यूरोपीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। परिणामतः आज नर-नारी के संबंध विघटित हो रहे हैं। भारतीय संस्कृति में पति-पत्नी के रिश्ते की जो अवधारणा है वहाँ निरंतर परिवर्तित होती जा रही है। प्रेम व आपसी विश्वास जैसे मूल्य जो दाम्पत्य जीवन के मूलाधार तत्व हैं, वे अदृश्य होते जा रहे हैं। लेखक अपने उपन्यासों के माध्यम से मॉरिशसीय समाज में भारतीय संस्कृति की ढीली होती जड़ों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने में पूर्णतया सफल हुए हैं। परम्परागत मूल्यों के विघटन के फलस्वरुप वहाँ के समाज में स्त्री-पुरुष के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए डॉ श्यामधर तिवारी लिखते हैं कि "मॉरिशस समाज में कितने ही ऐसे लोग हैं जो खुले आम सुरा-सुन्दरी का उपभोग कर रहे हैं और कुछ लोग ऐसे हैं, जो सेक्स की तलाश में अपनी जिंदगी बर्बाद कर रहे हैं।"[9]

इस प्रकार अभिमन्यु अनत ने सांस्कृतिक संक्रमण के प्रति ही चिंता व्यक्त नहीं की है, वरन् वे नवीन पीढ़ी द्वारा पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति को अपनाने के प्रति भी अपना क्षोभ प्रकट करते हैं।

निष्कर्ष

अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में मॉरिशस के समाज एवं वहाँ की संस्कृति से सम्बंधित विभिन्न मान्यताएँ अभिव्यक्त हुई हैं। वस्तुतः विस्थापित व्यक्ति या समूह अपने-अपने जातीय अनुभवों, मिथकों, सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़े मूल्यबोध और अपनी मातृभाषा को अपने साथ नए स्थानों पर ले जाते हैं और फिर उनके सहारे अपने लिए नीड़ का निर्माण व जीवन पद्धति का विकास करते हैं। अभिमन्यु अनत ने मॉरिशस के प्रवासी भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान, संघर्ष व जागरुकता को अपने साहित्य में एक महत्वपूर्ण पक्ष के रुप में उजागर किया है। उनके पात्र अक्सर भारतीय और पश्चिमी संस्कृतियों के बीच टकराते हुए दिखाई पड़ते हैं। यह संघर्ष चाहे वह व्यक्तिगत जीवन में हो या सामाजिक संबंधो में, संस्कृति के बदलाव की आवश्यकता व चुनौतियों को दिखाता है। इस सांस्कृतिक टकराहट के बीच पात्र अपनी सांस्कृतिक जड़ों को फिर से पहचानने और उसे आत्मसात करने का प्रयास करते हैं। उनके पात्र मॉरिशस जैसे देश में भारतीय संस्कृति के मूल्यों को बचाने की कोशिश करने के साथ ही आधुनिकता के साथ सामंजस्य बिठाने का भी प्रयास करते हैं। अनत का लेखन दर्शाता है कि सांस्कृतिक चेतना का सही रुप केवल अतीत को बचाने में नहीं अपितु वर्तमान एवं भविष्य के संदर्भ में जोड़कर उसे एक नई दिशा देने में निहित है।

[1]शोधार्थी,
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ
[2]शोध निर्देशिका,
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ

[9] तिवारी, श्यामधर (1995), अभिमन्यु अनत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृ. 1

7

डॉ. काशीनाथ सिंह के संस्मरण साहित्य : भाषा शैलीगत विशेषताएँ

डॉ. एस. प्रीति

शोध सार

संसार के प्रत्येक प्राणी के लिये भाषा का अपना विशेष महत्व होता है। जैसे-जैसे प्राणियों का विकास हुआ भाषा का विकास भी उसी के साथ-साथ होता गया। चाहे वह पशु-पक्षियों की भाषा हो, चाहे मानव की सभी प्राणी भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

साहित्य की प्रत्येक विधा में भाषा का महत्व सर्वापरि है। भाषा माध्यम होती है जिसके सहारे लेखक पाठकों के हृदय में प्रवेश करता है। साहित्यकार के लिए कलात्मक विचारों के साथ-साथ उपयुक्त शब्दों एवं सुंदर भाषा का होना आवश्यक है। जिस प्रकार आभूषण तो मात्र स्त्री के बाहरी सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं लेकिन स्त्री का वास्तविक सौन्दर्य उसका आन्तरिक सौन्दर्य होता है। जो उसकी सुन्दरता को स्थापित करता है और यह आन्तरिक सौंदर्य है- रचनाकार का अन्तःकरण, उसके अन्दर से निकलने वाले भाव।

कथाकार काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य इसी आन्तरिक सौंदर्य को अभिव्यक्त करता है। काशीनाथ सिंह के संस्मरण इतने रोचक एवं लोकप्रिय बन पड़ने का मुख्य कारण है उनकी विशिष्ट भाषा शैली। भाषा के इस सहज परिवर्तन को कौशलपूर्वक अभिव्यक्त करने की वजह से उनके संस्मरणों में भाषा के विविध रंग एवं पैटर्न देखे जा सकते हैं।

बीज शब्द : क्लासिक, अश्लीलता, ऋषिकेश, फक्कड़

शोध आलेख

काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में प्रयुक्त भाषा पात्र विशेष के भाषाई संस्कारों के अनुरूप रूपायित हुई है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पर लिखे गये संस्मरण में भाषा का 'क्लासिक रूप' देखा जा सकता है। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के अनुरूप लेखक की भाषा संस्कृतनिष्ठ शब्दावली को अपनाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का चित्रण करते समय काशीनाथ सिंह की भाषा जैसे 'द्विवेदीमय-सी' हो जाती है जिसे हम 'होल्कर हाउस' में हजारीप्रसाद द्विवेदी नामक संस्मरण में देख सकते हैं। इस संस्मरण में भावानुभूति है, शब्द-श्रद्धांजिल, प्रतीकात्मक, वर्णनात्मक एवं आत्मवृत्तान्त शैली में प्रस्तुत किया गया है- "शुरु में ऐसा लगता जैसे पंडित जी मंत्र बुदबुदा रहे हैं- मंद और गंभीर स्वर में। धीरे-धीरे वहाँ से उनका मनुष्य गायब हो जाता है और नजर आने लगता है हिलौरे लेता हुआ एक अकुतोभय अगाध सागर-विश्व का सारा ज्ञान और भूमंडल का सारा रहस्य और ग्रहें की टिमटिम जिज्ञासा और जंगलों की निराली हरियाली और मनुष्य की निश्चय उत्फुल्लता समेटे हुए...। सुननेवालों में प्रत्येक व्यक्ति को महसूस होने लगता कि उसके भीतर एक आंदोलित जलप्लावन है जो कल-कल निनाद कर रहा है, दहाड़ मार रहा है, ठहाके पर ठहाके लगा रहा है, अट्टठ्ठाहास कर रहा है... ।"[1]

'होल्कर हाउस में हजारीप्रसाद द्विवेदी' संस्मरण में जहाँ भाषा इतनी परिष्कृत एवं प्रांजल हुई है, वही भाषा जब अपने समकालीन रचनाकार मित्रों का उल्लेख करती है तब उस भाषा का रूप कुछ 'लीरिकल और व्यंग्यात्मक' हो जाता है -

"कासी के चार यार
लोग कहे बार बार
कासी के चार यार"

इसी प्रकार जब संस्मरण बनारस के मुहल्ले अस्सी चारैहा के सामान्य जनता का चित्रण करते हैं

तब उनकी भाषा में उसी मस्ती का रंग देखने को मिलता है जैसे बनारस में देखा जाता है- "मित्रों यह संस्मरण व्यस्कों के लिए है, बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है। जो भाषा में गंदगी गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं, और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषा विद् 'परम' (चूतिया का पर्याय) कहते हैं, वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखाएँ।"[2]

प्रसंगवश समाज में प्रयुक्त किसी भी शब्द को अश्लील, गलत अथवा त्याज्य नहीं कह सकते। विभिन्न बोलियों में ऐसे शब्दों का उपयोग होता है। तथाकथित वर्णित शब्द सही है या गलत यह व्यक्ति के उच्चारण एवं प्रसंग पर निर्भर करता है। समाज के प्रत्येक अंग में चाहे वह शहर हो, कस्बा हो या गाँव हो ऐसी शब्दावली का प्रयोग अपनी सहजता में स्वाभाविक है। शब्दों में व्यक्ति के भाव निहित होते हैं। काशीनाथ सिंह अपनी प्रयोजनर्धिमता और कला कुशलता में असाधरण होने के बावजूद जिस संस्कृति और समाज से आते हैं उसमें गालियों का भी अपना पारस्परिक समाजशास्त्र है जो कई बार रचना के स्तर पर विकासशील होने की गवाही देता है।

काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में संवादों का विशेष महत्व है। संवादों के माध्यम से स्मरणीय व्यक्तियों के चरित्रों को उजागर करने में काशीनाथ जी माहिर है। संवादों के प्रयोग से व्यक्तियों के स्वभावगत विशेषताओं को जानने और समझने में सहायता मिलती है। पात्रों के चरित्र को दिखाने के लिए लेखक (काशीनाथ सिंह) विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। इस संदर्भ में धूमिल के साथ काशीनाथ जी के संवाद निम्न हैं- "वह लड़कियों को देखते ही लार टपकाते हुए अस्सी के कवियों, लेखकों को देखता तो बोलते-बोलते चुप हो जाता गंभीर। जब लड़की चली जाती तो कोई कहता कि हाँ, तो धूमिल क्या कर रहे थे। वह टूटे मन से कहता है- कुछ नहीं कर रहे थे।"[3]

एक बार ऋषिकेश में संस्मरणकार और धूमिल अलकनंदा तट पर बेठै थे कि सामने से एक गोरी चिट्टी बेहद खूबसूरत लड़की आती हुई नजर आई। लेखक ने धूमिल से कहा- "वह लड़की देखो, कितनी खूबसूरत है।"

धूमिल ने बिगड़कर कहा- "तुम्हीं देखो। क्या मैं चमार हूँ कि बैठे-बैठे चमड़ी की तारीफ करूँ।"[4]

उपर्युक्त संवादों से धूमिल की स्वभावगत विशेषताओं का पता चलता है। उनकी मध्यवर्गीय चेतना अपने संस्कारों को भाषागत प्रयोगों में विस्मृत नहीं कर पाती। काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में संवादों का अपना एक विशेष महत्व है। संवादों के माध्यम से लेखक व्यक्ति के मात्र स्वर से ही परिचित नहीं कराता बल्कि कथित पात्र की स्वाभाविक विशेषताओं की ओर संकेत करता है। इस संदर्भ में रामजी सिंह का उदाहरण द्रष्टव्य है- "उन्होंने एक बार अपने पास चेले को पकड़ा रिजल्ट आया ही था। उन्होंने पूछा- 'बे लाल जी! हम तुझे पढ़ाये, जो-जो नहीं आता था तुझे, सब बताए, लिखाए, रटाए, तू पास हो गया, हम कइसै फैल हो गये? लाल जी बोले- गुरु ऐसा है कि आप जो पढ़ाये वह तो हम पढ़े ही बाकी आपकी चोरी-चोरी भी कुछ पढ़े थे।"[5]

रामजी भइया को अपने चेले के उत्तर से संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने अपने भाई यानी संस्मरणकार से पूछे- "अंदाजा लगाओ तो जरा! क्या बात हो सकती है? इसमें अंदाजा लगाने जैसी कोई बात नहीं थी लेकिन मैं अंदाजा लगाने लगा और कोई जगह नहीं थी। 'ने', 'में', 'का', 'के', 'पर', 'से' आदि को वे फालतू और बेमतलब का समझते थे। सीधे-साधे वाक्य में अडंगेबाजी के सिवा और कोई काम नहीं नजर आता था इनको। लेकिन यब बताता तो लात खाता।"[6]

उपर्युक्त पंक्तियों में रामजी सिंह के वार्तालाप शैली का पता चलता है। 'बे लाल जी', 'लिखाए', 'रटाये', 'कइसे' ये कुछ ऐसे शब्द है जो रामजी सिंह की भाषा के लहजे को दर्शाता है। काशीनाथ सिंह

अपने अग्रज रामजी सिंह के भाषा प्रयोग संबंधी त्रुटियों को छोड़ते नहीं है। यही एक कथाकार या संस्मरणकार की भाषा शैली संबंधी खूबी है कि वह व्यक्ति विशेष के उच्चारण, लहजे और व्याकरण सम्मत प्रयोग की खामियों और विशेषताओं को दर्शाता है। अस्सी चौराहा पर रहनेवाले तन्नी गुरु की भाषा का एक नमूना इस प्रकार- "तुम उस दिन गोपाल की दुकान पर मंडल-मंडल काहे चिल्ला रहे थे? ...तुम्हें याद है न। जब वह विपिया भोंसड़ी के हर जगह से दुरदुराया और लतियाया जा रहा था- तो यही अस्सी भदैनी है जिसने उसका तिलक किया और कहा- राजर्षि! राजा नहीं फकीर है, देस की तकदीर है। और ससुरा दिल्ली गया तो हमारे ही 'उसमें' डंडा कर दिया। ...और अब तुम भी पगलाये गए हो का? चलो, पान खिलाकर प्रायश्चित करो! ए देवराज! दो ठो पान बढ़ाना तो।"[7]

इसी प्रकार काशीनाथ सिंह की भाषा का प्रवाह एक-सी गति में प्रवाहित नहीं होती। उनकी भाषा का गतिसूचक यंत्र निरन्तर बदलता रहता है। भाषा की यह गति प्रवाहमयता स्वरों के उत्थान-पतन पर निर्भर करती है। कुछ स्थल ऐसे है जहाँ भाषा तीव्रगामी हो गयी जैसे- "धूमिल के लिए ऐसी बातें बकवास थी- एकदम बेकार। लिहाज। किसका लिहाज। आपके ओहदे का। आप प्रोफेसर हों, डॉक्टर हों, इंजीनियर हों, बड़ी भारी तोप हों, चाहे जो हों लेकिन बाते टुच्ची करते हैं, दिमागी तौर पर दिवालिया हैं, घटिया चीजों में दिलचस्पी लेते हैं, तो आप बर्दाश्त के बाहर हैं । आपसे बात करना अपना समय और दिमाग दोनों नष्ट करना है। और लिहाज किसका? उम्र का? महोदय, आप जहाँ-के-तहाँ रह गये। बीवी बच्चों और दुनियादारी में जिन्दगी खपा दी और हमें भी वही बनाये रखना चाहते हैं। आपने किया ही क्या? जिसके लिए आपका लिहाज करें, चुप रह जायें आपके प्रवचन को सुनकर। इतने वृद्ध नहीं है हम।"[8]

काशीनाथ सिंह की भाषा में यह गतिशीलता खास कर लम्बें अनुच्छेदों में देखने को मिलती है। जहाँ जैसा भाव होता है वैसे अनुच्छेदों में भी अन्तर आ जाता है, परन्तु कहीं भी भाषा का प्रवाह रूकता नहीं है। भाषा इन संस्मरणों में अबाध गति से बहती रहती है। काशीनाथ सिंह की भाषा भावानुसरणी भाषा है। उसमें पात्र एवं प्रसंग के अनुसार अभिजात्य भाषा शैली, मध्यवर्गीय भाषा संस्कार शैली और निम्नवर्गीय, बेलौस और बेलाग, फक्कड़ शैली का प्रयोग मिलता है।

काशीनाथ सिंह ऐसे गद्य लेखक हैं जो बखूबी जानते हैं कि कौन-सा शब्द किस जगह अपनी सार्थक अर्थवता ग्रहण कर सकता है। अपनी भाषा के प्रति इतने सतर्क लेखक बहुत कम देखने को मिलते हैं। उनके संस्मरणों से जाहिर है कि शब्दों के चयन में लेखक ने भरसक मेहनत की है। तत्सम, तद्भव, देशज, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी आदि शब्द प्रयोगों में 'औचित्य एवं सौन्दर्य' का समन्वय एवं संतुलन देखा जा सकता है। काशीनाथ सिंह अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी प्रसंगानुरूप करते हैं। इन शब्दों की सार्थकता गठन के अनुसार देखी जा सकती है। नागानंद संबंधी अपने विचार प्रकट करते हुए काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "उनके लिए यह संतोष की बात थी कि इस नगर में कोई है जो उन्हें समझता है, उन्हें धैर्य से सुनता है, उन्हें सम्मान देता है, 'सीरियसली' लेता है।"

प्रस्तुत वाक्य में अंग्रेजी भाषा का शब्द प्रयोग 'सिरियसल्ली' जितना सटीक ठहरता है अगर इसके बदले हिन्दी भाषा का शब्द 'गंभीरता' का प्रयोग किया जाता तो इतना सटीक न होता। इसी प्रकार संस्मरणों में ऐसे बहुत से वाक्यां में अंगरेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे-

"कालिया के पास एक स्मार्ट-सी भाषा है।"

"अस्सी का हर कारसेवक अयोध्या के रामलला के साथ हाटॅलाइन पर।"

"सुनाने के बाद मैंने कभी भी उन्हें रिवाइज करते हुए या संशोधित करते हुए नहीं देखा।"

तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रस्तुत संस्मरणों में बहुत कम देखने को मिलता हैं। ऐसे संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग द्विवेदी जी से संबंधित वाक्यों में अधिक हुआ है। जैसे- "धीरे-धीरे वहाँ से उनका मनुष्य गायब हो जाता और नजर आने लगता हिलौरे लेता हुआ एक अकुतोभय अगाध सागर।"[७]

इसी प्रकार काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में उर्दू भाषा का प्रयोग भी देखने को मिलता है। जैसे- "अजीब दीवानगी का माहौल था उन्हें देखने-सुनने के लिए।" काशीनाथ सिंह विभिन्न भाषाओं के शब्द अपनाते हैं। कहीं-कहीं संस्मरणों में 'सामान्य बोलचाल' के शब्दों का सौन्दर्य देखते ही बनता है। ऐसे ही शब्द प्रयोग के कारण काशीनाथ सिंह संस्मरण साहित्य में अन्य संस्मरणकारों से अलग जान पड़ते हैं। सामान्य बोलचाल के कुछ देशी वाक्य शब्दों का प्रयोग निम्नतः है-

"रामनारायण आदमी तो पिद्दी से थे।"

"वह पूरा तरंग में था।"

"लगभग संड-मुसंड ऐसे नौजवानां की सेना जिन पर विश्वविद्यालय और नगर में मार-पीट, लूट -मार हत्या और आगजनी के मुकदमें चल रहे थे।"

इस प्रकार उपर्युक्त वाक्यों में 'पिद्दी', 'तंरग', 'संड-मुसंड' जैसे शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। लेखक के समूचे संस्मरण साहित्य में छोटे-छोटे वाक्य-विन्यासों का प्रयोग देखने को मिलता है। लेखक ने ऐसे बहुत कम अनुच्छेदों का प्रयोग किया है। जिनकी लम्बाई दस-बारह पंक्तियों से अध्कि हुई हों। लेखक काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में ऐसे अनुच्छेद देखने को मिलते हैं । जिनमें केवल दो-तीन ही शब्द है, यहाँ तक कि मात्र एक शब्दां वाले वाक्यांशां अथवा शब्दाशां का प्रयोग संस्मरणां में हुआ है। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित अनुच्छेद देखे जा सकते हैं। जैसे -

"मैं चुप"

"विजयमोहन"

"इति प्रस्तावना"

"रेक्टर माने बहुत कुछ"

"यह नागांनद थे।"

इसी प्रकार प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशिष्ट मुहावरें एवं लोकोक्तियाँ होती हैं। इन मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य वृद्धि होती है। काशीनाथ सिंह जी के संस्मरणों में मुहावरेदार भाषा के प्रयोग से भाषा अधिक जानदार प्रतीत हुई है। मुहावरों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

"जिसका कुछ नहीं उखाड़ सकी मुसीबतें"

"मधुकर सिंह और जाने कितने कहानीकारों की गर्दन हलाल होनी थी।"

"नागानंद के पिता शायद सन् तीस के दशक के गणित के एम.ए. थे, लेकिन कुछ कारणों से रामायणी हो गये थे।"

इस प्रकार उपर्युक्त मुहावरों के प्रयोग से भाषा की सुन्दरता में वृद्धि हुई। कहीं भी इन मुहावरों के प्रयोग से भाषा अस्वाभाविक या कृत्रिम नहीं लगती, बल्कि मुहावरों के सटीक और स्वाभाविक प्रयोगों के कारण भाषा इतनी सहज एवं सौंदर्यकारी बन पड़ी। काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में क्रियापद रहित वाक्यों का प्रयोग भरपूर मात्रा में देखने को मिलता है। वाक्य गठन में जहाँ क्रियारहित वाक्यां का प्रयोग हुआ है वहीं शब्दक्रम में परिवतर्न भी अनके जगहों पर हुआ है। संस्मरणों में ऐसे अनके वाक्य मिलते हैं जहाँ भाषा की प्रवाहमयता के साथ वाक्य एवं शब्दों के क्रम में परिवर्तन हो जाता है। जैसै -

"नगर चकित भी था और भयभीत भी हमारी दोस्ती से।"

"चाचा तीन भाई थे। कभी-कभी भाइयों में झगड़ा होता किसी बात को लेकर।"

"इसी समय मौसम के मुताबिक मैं धूमिल के साथ कार्यक्रम बनाता-रात का।"

इस तरह के अनेक उदाहरण काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में देखने को मिलते हैं जिसके कारण भाषा कभी-कभी अक्रमबद्ध एवं बिखरी सी लगती है। भाषा की गतिशीलता के कारण लेखक इस तरह के प्रयोग करता है। इसीलिए काशीनाथ सिंह के संस्मरणों की भाषा कुछ-कुछ काव्यात्मक हो गयी है।

काशीनाथ सिंह के संस्मरण साहित्य में व्यंग्य के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। लेखक काशीनाथ सिंह समकालीन साहित्यकारों के पाखंड को देखते हुए उन पर व्यंग्य करने को मजबूर हो जाते हैं। जैसे- ''मुझे वहीं पता चला कि विजयमोहन के पास भी अब एक दिल हो चला है जो 'इनकम टैक्स आफिसर' गोविंद मिश्र के फ्रिज में बोतल की शक्ल में विराजता रहता है।''

''इसी दम मैंने कहानी के शेयर बाजार के चतुर व्यवसायी कमलेश्वर के व्यक्तित्व की मूल पांडुलिपि देखी। उन्होंने काशी के हवाले से उन लोगों की घनघोर भर्त्सना की जो आदमी के फालतू होने की वकालत करते थे।''

इसी प्रकार जहाँ एक ओर काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरणों में व्यंग्य की कचोट की है तो वहीं दूसरी ओर हास्य का प्रस्फुटन और उपहास रूपी प्रसाद भी देखने को मिलता है। उदाहरण के रूप में-

रामजी सिंह की शादी में कविवर त्रिलोचन का मात्र लँगोट पहनकर बारात के साथ चलनेवाला प्रसंग, नामवर सिंह और त्रिलोचन का गंगा में डुबकी लगानेवाला प्रसंग है जो हास्य-व्यंग्य से सरोबर है। परन्तु इन सबके बावजूद हास्य शैली का चरमोत्कर्ष अस्सी की सामान्य जनता को आधार बनाकर लिखे संस्मरण ''देख तमाशा लकड़ी का'' में देखने को मिलता है। प्रस्तुत संस्मरण के प्रत्येक अनुच्छेद, प्रत्येक वाक्य यहाँ तक कि शब्द-शब्द में हास्य व्यंग्य निर्मित हुई है। लेखक का वाग्वैदग्धय इस संस्मरण में अपने चरम उत्कर्ष पर दिखाई देता है। शब्द संकेतों एवं वाक्य व्यंजनाओं की अभिव्यक्ति सामर्थ्य पाठक को मंत्रमुग्ध करता है। डॉ. गया सिंह पर काशीनाथ सिंह की निम्नलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है-

''हरिश्चन्द्र महाविद्यालय के अध्यापक डॉ. गया सिंह ने 'विद्वान' कहलाने के लिए अथक संघर्ष किया है। एक ओर विद्वानों की संगत, दूसरी ओर ऐसे लोगों से मारपीट जो उन्हें गुंडा, लठ, झगड़ालू, मुकदमेबाज और जाने क्या-क्या कहते थे। अपने को विद्वान साबित करने के लिए उन्होंने कई लोगों से कई मुकदमें भी लड़े। अनाड़ी लोग उन्हें कानपुर के 'धरतीपकड़' घोड़ावाले के टक्कर का व्यक्तित्व मानते हैं। ये चुनाव तो नहीं लड़े लेकिन हिन्दू-विश्वविद्यालय के एक विभाग में निकलने वाला ऐसा कोई पद नहीं जिसके लिए इंटरव्यू न दिया हो। अगर ये छँटे तो अपनी विद्वता के आतंक और दबदबे के कारण। मूर्खता के कारण दूसरे छँटे।''[10]

इस तरह के अनेकानेक उदाहरण इस संस्मरण में देखने को मिलते हैं। लेखक अपने संस्मरणों में अनेक लोगों को याद करते हैं। उनके हाव-भाव प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं के साथ स्मरणीय पात्रों को याद करते हुए लेखक पात्रों की विशेषताओं से भी पाठकों को परिचित कराते हैं। उपमाओं, रूपकों, अन्योक्तियों, मुहावरों एवं विशेषणों से लेखक संस्मरणीय व्यक्तियों पर टिप्पणी करते हैं। व्यक्ति विशेष की विशेषताओं को दर्शानेवाली अनेकानेक सूक्तियाँ एवं कहावतें काशीनाथ सिंह जी ने अपने संस्मरणों में उद्घाटित की हैं जैसे- ''इन वजहों से या जाने किन वजहों से धूमिल ने मुझे अपनी कविताओं का 'बैकुंठ बाबू' समझ लिया था।''

काशीनाथ सिंह केवल व्यक्ति-विशेष को दर्शाने के लिए ही ऐसी सारगर्भित सूक्तियाँ एवं लोकवार्ता संबंधी कहावतें नहीं लिखते बल्कि बनारस के शहर तथा वहाँ के रहनेवाले नगरवासियों की भाषागत प्रयोगधर्मिता संबंधी विशेषताओं को भी इंगित करते हुए, ऐसी मनोरंजक एवं लक्षणीय पंक्तियों की रचना

करते हैं। जैसे- "हर हर महादेव के साथ भोंसड़ी के नारा इसका सार्वजनिक अभिवादन है।"

"जो मजा बनारस में, न पेरिस में, न फारस में 'इश्तहार' है इसका।"

"गुरु' यहाँ की नागरिकता का सरनेम है।"

इस प्रकार भाषा के विविध प्रयोगों के कारण प्रस्तुत संस्मरण 'याद हो कि न याद हो' इतना रोचक तथा पठनीय है।

इसी प्रकार 'आछे दिन पाछे गये' काशीनाथ सिंह का वह संस्मरण है जिसमें उन्होंने पूर्ण निर्भीक भाव से स्व से तटस्थ रहते हुए अपने अतीत को खंगाला है। इस संस्मरण के माध्यम से काशीनाथ सिंह ने सभी पात्रों, उसके व्यक्तित्व एवं उसके जाने-अनजाने पहलूओं को उद्घाटित करने के साथ-साथ उसे जीवंत किया है। इस संस्मरण संकलन में इन्होंने भाषा शैली का विशेष ध्यान रखा है। यहाँ पर बेबाकी, अंकुठ भाव, और सूफीयाना शैली का प्रयोग किया है। भाषा-शैली के साथ-साथ ही काशीनाथ सिंह ने वर्ण-विन्यास, वाक्य संरचना आदि पर भी जोर दिया है।

'आछे दिन पाछे गये' के हर एक अध्याय में उन्होंने संस्मरण को अपनी विशिष्ट भाषा शैली से सजाया है। प्रथम अध्याय 'रहना नहीं देस बिराना है' इसमें काशीनाथ सिंह ने पात्र एवं माहौल के अनुरूप देहाती, अनपढ़ भाषा के व्यंग्यात्मक, भावात्मक एवं सच्ची शैली में डुबो कर प्रस्तुत किये हैं।

"पांडे! तू सतुआ, हम पानी।"

"हम कहते रह गये मुँहझौंसा से कि मरना है तो यहीं मर। फेंकने-पबारने वाले दो चार लोग तो मिल ही जायेंगे लेकिन मरेंगे तो कासी जी में। अब भर गया पेट न? यहाँ मरने से मिठाई मिलती है तो खा मिठाई! भर ले भेट रास्ते भर इसी तरह की बक-बक।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने भाषा को भावात्मक होते हुए भी उसे व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया हैं। देहाती भाषा, व्यंग्य, बक-बक इन सभी को काशीनाथ ने एक ही शैली में समायोजित किये हैं।

"वह बैठ गई और कुछ देर चुप रही- "बच्चियों की शादी हो गई। बेटे नौकरी पर गये। रह गये हम दो बूढ़े। कभी शादी-ब्याह का सुख नहीं जाना। लोग हैं कि 'मैरेज सर्मनी' मनाते है। और भी क्या-क्या करते हैं। आप से जब भी कहा- कहते हैं कि मेरे यहाँ चलन नहीं है। अरे चलन चलाने से होता है।"

प्रस्तुत प्रसंग में लेखक ने पात्र के माध्यम से व्यंग्यात्मक शैली का सहारा लेते हुए आजकल के आधुनिक विचारधारा एवं क्रियाकलाप पर तीखा कटाक्ष किया है। और ढकेल कर गिराते हुए बोला "उठ साले। उतनी दूर से आ रहा हूँ और बैठा हुआ है अभी?" प्रस्तुत वाक्यांश में काशीनाथ सिंह ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए भाषा में हास्यापद शैली का भी समायोजन किया है।

"अपने-अपने अजनबी उसे प्रिय हैं और आस्तित्ववाद में रूचि है। जब रिसर्च के 'टॉपिक' की बात चली तो उसने अज्ञेय और उनकी कविताओं में अपनी पसंद बताई।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने भाषा शैली में अंग्रेजी शब्दों को समाकलित करते हुए इसमें भाषा को एक नये सिरे से प्रस्तुत किया है।

'कहानी की वर्णमाला और मैं' इस अध्याय में काशीनाथ सिंह ने 'कमिटमेंट', 'कोर्स', 'डिफेंड' और 'मूड' जैसे शब्दों के अधिकधिक प्रयोग से भाषा शैली में अंग्रेजी पर अत्यधिक जोर दिया है।

जैसे कि "संस्मरण भी साहित्यिक विधा का ही एक अंग है, लेखक ने पूर्णतः साहित्यिक शैली का प्रयोग किया है। जैसे कि मेरी एक कहानी। 'कस्बा, जंगल और साहब की पत्नी' की चर्चा करते हुए राजेन्द्र यादव ने उसमें तटस्थता की तारीफ की थी। एक जमाने से लेखक का तटस्थ होना बड़ी बात मानी जाती थी।"

ठीक इसी तरह "लेकिन गोर्की ने मुझे अहसास कराया कि क्रांति से पहले रूस की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक स्थितियाँ बहुत कुछ ऐसी थी कि जैसी अपनी मुल्क में हैं। चूँकि भावी रूस सभी क्रांतिकारियों के लिए सपना था इसीलिए गोर्की ने भी ऐसे चरित्रों की रचना की जो समाज में भले न रहे हो पर उनका होना सामाजिक परिवर्तनों के लिए बेहद जरूरी था।"[11]

प्रस्तुत गद्यांशों में लेखक ने भाषा शैली को ओज रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे सामाजिक एवं समसामयिक तथ्यों की ओर अग्रसरित किया है। भाषा शैली पूर्णतः प्रेरणास्पद एवं पात्रोचित दृष्टिगोचर होती है।

"बेहद खूबसूरत! जापान इस धरती पर चमत्कार है। भारत में रहते हुए मैं ऐसे देश की कल्पना नहीं कर सकता था जो एक ओर इतना आधुनिक हो और दूसरी ओर प्यार और आत्मीयता से भरपूर।"

प्रस्तुत वाक्यांशों में लेखक ने सौन्दर्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए जापान की सुंदरता को अपनी कलम से संजाये हैं।

ठीक इसी तरह "गाड़ी आयेगी। सारे दरवाजे अपने आप एक साथ खुल जायेंगे। गाड़ी चलेगी। सारे दरवाजे खुद एक साथ बंद हो जायेंगे। प्लेटफार्म और सड़कों के किनारे वजन लेनेवाली मशीने हैं जिनमें चाय, बीयर, कॉफी, फलों के रस आदि के अलग-अलग खाने हैं उनके नीचे स्विचें। पैसा डालिये, स्विच दबाइये और अपनी पसंद की चीजें नीचे से उठा लिजीये।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने जापानी सौन्दर्य को अपनी विलक्षण प्रतिभा से सौंदर्य एवं भावात्मक शैली में समेकित करते हुए प्रस्तुत किया है।

"यह जगह है, जहाँ अनजाने लोग आने का साहस नहीं करते, क्योंकि यह चोरों, गुण्डों, बेकारों, निठल्लों एवं आवारों का क्षेत्र है। वे किसी भी नये आदमी का सामान मार-पीट कर छीन सकते हैं। कत्ल भी होते हैं यहाँ।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने वाक्यांशों को बीभत्स एवं विस्मयात्मक शैली का आवरण देते हुए उसे सटीक रूप में प्रस्तुत किये हैं, जो जापान के एक छुपे रहस्य को उद्घाषित करती हैं। जहाँ जापानी के विकृत व्यवस्था का पोल खुलता हुआ प्रतीत होता है।

"नहीं वे रोते भी हैं। मैं गंभीर हो गया। जब मैं लोगों से बताऊँगा कि जापान में बड़ी समृद्धि है, ऊँची-ऊँची इमारते हैं और भारी-भारी मशीने हैं, एशिया में जापान एक आश्चर्य है, बड़ा सुख है, देश ने बड़ी तरक्की कर ली है, वहाँ के लोग भारत से अधिक अतिथि वत्सल हैं, फिर भी हर जापानी परेशान है, चुप और उदास है, मुस्कुराता तो है, लेकिन हँसता नहीं तो मुमकिन है, बहुत से लोग आपके लिए रोने लगेंगे।"[12]

प्रस्तुत गद्यांश में काशीनाथ सिंह भावात्मक एवं करुण भाषा शैली का प्रयोग किये हैं जो वाक्य के अनुरूप किसी भी पाठक के हृदय को द्रवित कर सकने की क्षमता रखती है। भाषा-शैली का यहाँ पर अनपुम समायोजन हुआ है। भाषा शैली में करुण रस एवं भावुकता का काफी समालाप है।

"मूर्खों, गधे, सूअर के बच्चों। कौन गुंडई किया है। खड़े हो जा और सच-सच बता दे नहीं तो किसी की खैर नहीं। मैं बिल्कुल बर्दास्त नहीं करूँगा यह गुंडई। मैं मुक्का से डंडा फोड़ सकता हूँ तो सिर क्या चीज है? गुरु जी, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि ऐसे नीच को कॉलेज से न निकलवाया तो मेरा नाम नहीं।"[13]

प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने क्रोध (उग्र) भाषाशैली का प्रयोग करते हुए इसी भाषा को व्यंग्यात्मक शैली में भी प्रदर्शित करने की कोशिश की है। भाषा शैली का पात्र से मिलता-जुलता संबंध् है।

"मल्ल जी पढ़ा रहें हैं- धाई जित तित ते विदाई हेतु उधव की, आरत भरी गोपी संमारति न सांसुरी। तो धाई। जित-तित ते धाई। किस हेतु धाई। विदाई

हेतु धाई। कौन धाई। नहीं नहीं रूकिये। पहले देखिये कि किसकी विदाई हेतु जित-तित ते धाई। तो उधो की विदाई हेतु। कौन। गोपी। किस हाल में? ''

प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने मल्लजी (व्याख्याता) के माध्यम से भाषा शैली को पूर्णतः व्यंग्यात्मक रूप में परिवर्तित कर दिया है। यहाँ पर पात्रानुरूप भाषा में व्यंग्यात्मक कटाक्ष भरा हुआ है। और फिर ''या तरूवर मँह एक पखेरू'' में काशीनाथ सिंह ने विभिन्न प्रकार के अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हुए भाषा शैली का आधुनिक रूप में परिवर्तित करने का पूरा प्रयत्न किया है। जैसे कि- ''वे टेंशन, टेक्स्चर, ऐम्बिग्यूटि, स्ट्रक्चर आदि से बराबर हमें आतंकित करते।'' फिर वहीं ''मैन इज रैशनल एनिमल' और 'डिफाईन', मिडियाकर इन सारी शब्दों के प्रयोग ने हिन्दी साहित्य में भी आधुनिक एवं अंग्रेजी भाषा का समाकलन प्रदर्शित किया है।''[14]

जैसा कि काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में देहाती एवं पूर्णतः निष्पक्ष भाषा शैली का प्रयोग हमेशा ही देखने को मिलता है, उसे उन्होनें 'आछे दिन पाछे गये' के हर अध्याय में किसी-न-किसी तरह से समाकलित किये हैं। हर एक अध्याय में भाषा-शैली अपने आप में जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करती हुई पात्रोनुचित एवं सुदृढ़ प्रस्तुत होती है। जैसे कि- 'या तरूवर महँ एक पखरू ' में ''बड़ा कावँ -कावँ किया लोगों ने। उसने कहा-रघवुर सहाय। बहुत से कवियां का मुँह टेढ़े हो गया लेकिन वह टस से मस नहीं हुए। उसने कहा-दूसरी परंपरा। रामविलास जी तक किड़िबड़ा उठे तमाम लोग हाय तौबा मचाते रह गये लेकिन हिन्दी से सस्कृत से अपभ्रंश से इससे-उससे दूसरी परंपरा।''[15]

प्रस्तुत गद्यांश में काशीनाथ सिंह ने खुद को प्रदर्शित करने के समय में भी तटस्थता का भाव रखते हुए एवं ग्रामीण परिवेशोचित भाषा-शैली का प्रयोग करते हुए उन्होंने भाषा-शैली के व्यंग्यात्मक एवं भावात्मक स्वरूप को चित्रित किया है। भाषा में देहाती शैली के अनुरूप वाक्य विन्यास एवं संरचना का समायोजन हुआ है।

लेखक अपने संस्मरण 'आछे दिन पाछे गये' में एक सुगठ भाषा शैली के हर रूप को समाकलित करते हुए उसे एक सुदृढ़ संस्मरण बनाने में कामयाब रहे हैं। इस संस्मरण में जहाँ एक ओर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग है, वही दूसरी ओर करुण एवं सौन्दर्य और फिर कहीं बीमत्स और ओजात्मक शैली का प्रयोग। यह सभी समायोजन ही इस संस्मरण की सुदृढ़ता का मूल कारण है।

जैसे कि- ''उन्होंने बनाया चाहे जितना हो, बिगाड़ा किसी का नहीं। उन्होंने अपने लिये किसी का मुँह नहीं जोहा, नित्य कर्म अपने हाथों कर लेते हैं। बेटों-बहुओं, नातियों-पोतों को जरूरत पड़ने पर कुछ दे ही सकते हैं, उनके पीछे हाथ पसारने की नौबत नहीं आई। वे स्वस्थ हैं, प्रसन्न हैं, उनके अपने लिए अपनी पेंशन ही काफी है। उन्होंने अपने सेवा काल में शिष्यों को लोक-परलोक सुधार का रास्ता ही दिखाया। अब उनमें मेरे जैसा कोई 'कुटिल', खल कामी, नराधम निकल आये तो उनका क्या दोष ईश्वर करें वे सौ वर्ष की आयु पार करें और जैसा अपने बुजुर्ग आशीर्वाद देते हैं- भात सिल पर पीस-पीस कर खाएँ और मगन रहें।''

प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने भाषा-शैली को अत्यंत ही करूण बनाते हुए भावात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। भाषा-शैली इतनी भावात्मक है कि यह किसी का भी हृदय द्रवित कर सकती है और यह अपने आप में प्रेरणास्पद भी प्रतीत होती है।

''वहाँ डल झील है, चार चिनार है, सोनमर्ग है, गुलमर्ग-खिलनमर्ग है, पहलगाम है, झेलम है, ढ़ेर सारे बाग हैं, बर्फ से ढ़की चोटियाँ हैं।''

प्रस्तुत गद्यांश में काशीनाथ सिंह ने कश्मीर की करामाती सुंदरता को अपने सौंदर्यिक भाषा-शैली से सुशोभित किया है। भाषा-शैली अपने आप में ही कश्मीर की सुंदरता को प्रस्तुत करती है।

इसी प्रकार एक जगह जहाँ लेखक ने सौंदर्यिक भाषा-शैली का अनूठा आकलन किया है- "ईठलाती हुई उंगली में आँचल लपेटती खड़ी रही। देखते-देखते ग्रीष्म ऋतु बसंत में बदल गई। मंद सुगंध मलयानिल बहने लगा, सूखे पेड़ हरे-भरे और फूलों से लद गये।"[16]

इस तरह उन सारी गद्यांशों, अध्यायों एवं पात्रोचित वाक्य-विन्यासों से पता चलता है कि- 'आछे दिन पाछे गये' में काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरण साहित्य को भाषा-शैली के सुदृढ़ रूप से सुसज्जित करने में कहीं भी कसर नहीं छोड़ी है। हर गद्यांश एवं अध्याय अपने-आप में भाषा शैली का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती है। जो कि संस्मरण के सफल होने का मूल आधार है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'आछे दिन पाछे गये' की सफलता के पीछे सुसज्जित भाषा शैली का भी अतुल्य योगदान है।

इसी प्रकार मुहावरेदार भाषा, उपमाओं, रूपकों, अन्योक्तियों, मुहावरां एवं विशेषणां का उचित प्रयोग एवं समायोजन हम काशीनाथ सिंह के संस्मरण 'घर का जोगी जोगड़ा' में अंकित वाक्यां एवं वाक्याशां से समझ सकते हैं। यथा-

"नाम जीयनपुर और जीवन का पता नहीं। हो सकता है जीवन की चाहत ने ही इसे जीयनपुर का नाम दिया हो।"

"आवाजापुर रोड़ के किनारे। आबादी और क्षत्रेफल के हिसाब से बड़ा गाँव, ठाकुरां के कई टोले। कोई ऐसी जाति नहीं जो न हो। स्कूल भी, दवाखाना भी। ऐसा गाँव जिसमें संपन्न भी थे, शिक्षित भी, बाहर नौकरी करनेवाले भी।"

"नामवर ने इसी गाँव में हिन्दी की वर्णमाला सीखी थीं 'न' पर 'आ' की मात्रा 'ना'।"

प्रस्तुत अंश भाषा शैली के भावात्मक एवं ग्रामीण सुलभ दृश्यों को प्रतिबिम्बित करता है। वहीं ग्रामीण असुविधओं को भी ग्राम के नाम से प्रस्तुत करता है। यहाँ पर भावात्मक शैली एवं ग्राम्य भाषा का उचित प्रयोग किया गया है।

"गरमी की भोर की शुरुआत होती सिवान में महुआ बीनने से। दोपहर आम और जामुन के पीछे बगीचे में। रात को जौ की रोटियाँ बनती थीं । अरहर की पनियल दाल। गेहूँ को ब्राह्मण देवता कहा जाता था। थोड़ा बहुत होता भी तो शादी-ब्याह और श्राद्ध के लिये रखा जाता था। प्रायः हर घर में एक-एक भैंस थी लेकिन जब व्यायी होती तो उसका मट्ठा ही मिलता वह भी नपने से उम्र के हिसाब से। दूध या दही के दर्शन खिचड़ी (मकर संक्राति) को होते, चिउरा के साथ। यह सारा कुछ इसलिए कि सिंचाई कुएँ या दैव के भरोसे थी।"

प्रस्तुत अंश में काशीनाथ सिंह ने ग्रामीण भोजपुरी भाषा के माध्यम से ग्रामीण जीवन के रहन-सहन और खान-पान को ग्रामीण सुलभ भाषा एवं उपमाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यहाँ पर पाठक को ऐसा लगता है कि वे खुद किसी ग्रामीण परिवेश को या तो महसूस कर रहे हैं या फिर उसकी कल्पना कर रहें हैं।

"एक दुःख उसे बराबर सालता रहा पति पढ़ा-लिखा और वह अपढ़ गँवार। वह अक्सर कहा करती थी कि अगर उसके गाँव में कोई स्कूल रहा होता तो जरूर पढ़ा होता। पढ़ने का सुख उसने तब जाना जब उसके बड़े बेटे को वजीफा मिला। उसी के पैसों में उसने बकरी खरीदी-अपने बच्चों के दूध पीने के लिए। वह चाहती थी कि उसके बेटे खूब पढ़े बड़ा आदमी बनें। लेकिन किसान का घर काम ही काम।"

प्रस्तुत वाक्यांशों में काशीनाथ सिंह ने अपनी माँ के बारे में कहा है। यहाँ पर वाक्यों को भाव रस (करुण रस) के साथ ही ओज रस का उचित समायोजन देकर भाषा शैली को पात्रोचित बनाया गया है।

"उनके चेहरे पर शिकन तक नहीं थी और माँ और हम दोनों भाई भविष्य को लेकर बेहद परेशान चल रहे थे। माँ की समस्या अलग ज्यादातर माँ शहर

में रही थी, जब गाँव जाना पड़ेगा तो कैसे और कब तक छिपाएगी कि 'बड़े बेटे की नौकरी छूट गई। सुनकर लोग हँसेंगे।''[17]

प्रस्तुत अंश में लेखक ने भाषा को थोड़ी गंभीर बनाकर विस्मय और शुद्ध हिन्दी का शब्द विन्यास देकर प्रस्तुत किये हैं। इन वाक्यांशों में करुण भाव का भी असर दिखाई देता है।

''सड़क पर आने के बाद भैया ठिठक गये और बोले- ''नगेन्द्र! वापस चलो। जिस विश्वविद्यालय में सम्मान के साथ मैंने छह-सात साल पढ़ाया है, उसी विश्वविद्यालय में मैं अदालत के हुक्म से नहीं पढ़ाऊँगा।'' प्रस्तुत अंश में लेखक ने भाषा शैली को पूर्णतः ओजात्मक एवं दृढ़ बनाकर प्रस्तुत किया हैं।

''इनके सिवा जिनके साथ उनकी बैठक होती थी, वे थे राजनीति विज्ञान के विद्वान लेखक डॉ. गणेशप्रसाद उनियाल, अंग्रेजी विभाग के जी.बी. मोहन तम्पी जो बाद में 'सोशल सांइटिस्ट' के सम्पादक हुए। इतिहास संस्कृति के विज्ञान डॉ. वी.सी. पाठक, संस्कृत-साहित्य के रतिनाथ झा-गरज कि नाना विषय के कई स्तरों और उम्रों के लोगों से उनकी ऐसी गूफ्तगू चलती की देखते बनता था।''[18]

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने भाषा-शैली के साथ रूपकों, उपमाओं एवं बिम्बों का भी अत्याधिक प्रयोग किया है। वही भाषा को पात्रों के अनुरूप उनकी स्तरात्मक बनाने का प्रयास किये हैं।

''ओंडेन ने कविता के लिए कहा है कि- ''पोएट्री इज द गेम ऑफ नॉलेज'' विटिंगस्टाईन ने भी ऐसा ही कहा है। लेकिन यह कविता पर ही नहीं सम्पूर्ण साहित्य पर लागू होता है। कहानी भी एक तरह का गेम है। उसे प्रसन्न, सहज, जीवन्त और जिन्दगी से भरपूर होना चाहिए। 'डल राइटिंग' कभी जीवित नहीं रहती।'' ठीक इसी तरह ''एक वे लेखक होते हैं, जो लिखते समय 'इन्वॉल्वड' रहते हैं।''[19]

प्रस्तुत अंशों में काशीनाथ सिंह भाषा-शैली को पर्यवेक्षणात्मक बनाकर और इसके अनुरूप उसमें अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार कर इसे थोड़ा 'एडवांस' रूप से प्रस्तुत किया है। यहाँ पर मुख्यतः देशज-अंग्रेजी 'एग्लो-इंडियन' स्टाइल का उचित प्रयोग किया गया है।

''लीला कलिकाल की निहारो गोविन्द जीव, शुक्ल रामचन्द्र है तो सेवक हनुमान हैं।''

प्रस्तुत अंश में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कर काशीनाथ जी ने रामचंद्र शुक्ल हनुमान सिंह पर व्यंग्य किया है। यहाँ पर भाषा शैली को दोहे के छन्दों में बदल दिया गया है।

''वे भारत की उन नारियों में से रही हैं, जो कभी नहीं जान सकीं कि पैदा होने और मरने के बीच जीवन भी होता है।''

''वे सिर्फ इतना ही जानते थे कि बेटी को चूल्हा-चक्की, झाड़ू-बुहारू बर्तन-भांडा माँजना आना चाहिये, गोबर-पाथना और आंगन पोतना आना चाहिये, सेर अढैया, पौवा आना चाहिये। यह अनिवार्य योग्यता थी शादी के लिए। बाकि सिलाई-कढ़ाई, चिट्टी-पत्री बाँचना जानती हो तो ''सोने पर सुहागा''। विशेष ध्यान दिया जाता था विरासत में मिलनेवाली उसकी जगह-जमीन, हल-बैल, खेती बारी पर। अगर दूध-दही भी उपर से साल भर मिलता रहे तो क्या कहने।''[20]

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने भाषा शैली को भावात्मक एवं पात्रानुरूप बनाया है। वही ग्रामीण परिवेश में नारी की विडंबनाओं और उसके स्थिति एवं उसके प्रति सोच को करूण भाव से उजागर किया है। ''बँटवारे से सबसे खुश थीं औरतें। काम का बोझ खत्म। आंगन छोटा हो गया था, न बुहारने में दिक्कत, न लीपने में। खाने वाले कम हो गये थे। चाहे जब पका लो, राशन खर्च भी कम, मेहनत भी कम। दिन भर ढ़ेकी चलाने, मूसल कूटने और आटा पीसने से छुट्टी।''[21]

प्रस्तुत वाक्यांशों में काशीनाथ सिंह ने व्यंग्यात्मक शैली को उपमाओं एवं ग्रामीण शब्द विन्यास का सहारा देकर पर्यवेक्षणात्मक भाव से अविरल रूप में प्रस्तुत किया है।

"देखो, रसोई और झाड़ू बुहारू तो कोई भी कर सकता है लेकिन वह काफी नहीं है। बी.ए., एम.ए. होना जरूरी नहीं है, लेकिन जितनी पढ़ाई-लिखाई की है, वह बहुत कम है। मैं कल से किताबें ला रहा हूँ उन्हें पढ़ा करो, बताया करो कि क्या समझा, कितना समझा, समझा कि नहीं समझा?"

"उधर भौजी के अपने तर्क थे गाँव में बिना इसके काम नहीं चल रहा सबका। मुहल्ले में ही किस औरत ने पढ़ा है? कोई नौकरी करनी है कि पढ़ो? झोंटा खोल कर बेशरम बेहया की तरह जो घूमती रहती हैं, वे अच्छी लगती हैं क्या?"

प्रस्तुत वाक्यांशों में लेखक ने भाव से भरे प्रेम स्वर को प्रस्तुत किया है। वहीं भाषा को पात्र के अनुरूप उनके ही शब्दों में प्रस्तुत किया है। वाक्य-विन्यास बिल्कुल सटीक है जैसा कि लेखक के भैया के लिए नम्र और सभ्य भाषा है उनकी भौजी के लिए मुँहफट एवं ग्रामीण भाषा जो उनके पात्रानुचित विशेषता को दर्शाती है।

"देख माँ, बहुत सी औरतें हैं जो लिखना-पढ़ना नहीं जानती हैं। मान लो मैं घर पर न रहूँ, काशी भी न रहे और कोई न रहे तो? कई तरह के लोग आते हैं। कुछ तो कहना पड़ता है कि नहीं है, अमुक जगह गये हैं, इतने दिन या इतनी देर में आएँगे। कुछ हो सकते हैं जिन्हें बिठाना पड़े, चाय के लिए पूछना पड़े, जब तक न आएँ बातें भी करनी पड़ सकती है, कहो उनसे और कुछ नहीं तो कम से कम यही सीख लें।"[22]

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने भाव को करुण स्वर में सजाकर स्नेहिल वाक्य विन्यास से सुसज्जित किया है। वहीं भाषा का प्रवाह अद्‌भुत तरीके से जारी रखा गया है।

"भैया हम लोगों से बात करते समय भौजी को 'देवता' बुलाया करते थे।"

यहाँ पर लेखक ने अनुप्रास का प्रयोग 'देवता' शब्द को सजाने के लिये किया है। और साथ ही उपमा के रूप में भी इस शब्द का प्रयोग किया है।

"विजय का नहीं, यह हमारा दुर्भाग्य था कि उसे हमारे साथ रहने के लिये सिर्फ दो साल मिले, उसके बाद छात्रावास फिर रूस वह कितना समझ पाया अपने पिता और चाचा को इस दौरान कहना मुश्किल है।"[23]

"बहरहाल, जब वह सुन्दर, आकर्षक और गबरू जवान बनकर बाहर से आया तो सब खुश। लेकिन भौजी की खुशियों के आगे सारी खुशियाँ बेमानी थी। आखिर इसी दिन का इंतजार था उन्हें।"

प्रस्तुत वाक्याश में जहाँ पहले वाक्यांश में काशीनाथ जी ने भाषा-शैली करुण एवं गंभीर बनाकर प्रस्तुत किया है, वही दूसरा वाक्यांश हर्ष का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है। यहां पर शब्द-विन्यास भी हर्ष के अनुरूप है।

"भैया क्या खुश होंगे जो भौजी थी। जिन घुटनों से काम के नाम पर उठा-बैठा नहीं जाता था, वे ही घुटने हफ्ते-दस दिन से इस कमरे से उस कमरे में ऊपर नीचे नाच रहे थे। खुशी रोकते-रोकते छलक पड़ती थी। बहू ऐसी की लाखों में एक। न गाँव में देखी थी, न शहर में ऐसी लड़की। 'रिसेप्शन' के समय जब दोनों सजधज कर मंडप में बैठे तब भौजी की समझ में आ गया कि तीन-चार साल क्यों लगा दिये थे बेटे ने लड़की पसन्द करने में। जोड़ा ऐसा कि आँखें जुड़ा जाए। जो भी देखे, निहाल हो जाये।"[24]

प्रस्तुत वाक्यांश में हर्ष भाव का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वही हर्ष के भावों को एक अद्‌भुत रूप में लोकोक्ति का सहारा लेकर सजाया गया है, ठीक उसी वाक्य में 'रिसेप्शन' शब्द को लेकर

अंग्रेजी-देशज विन्यास को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर भाषा प्रवाह एवं भाव-भंगिमा का भी अनोखा संगम रखा गया है।

"भौजी जीवन में पहली बार संतुष्ट दिखी थीं। जीयनपुर मंझली भौजी का, बनारस कुसुम का, भटिंडा निर्मला का। उनका कभी कुछ नहीं रहा। अब 109 न्यू कैंपस उनका था। वे दिन-रात उसकी व्यवस्था में व्यस्त भी थीं और परेशान भी। मालकिन थी पूरे घर की लेकिन 'आधी-अधूरी' इसलिए कि हर मालकिन की मिल्कियत 'किचन' होता है और किचन पर अब भी दुलारे का अधिकर था।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने भाव को संतोषजनक एवं हर्ष से मिश्रित कर प्रस्तुत किया है, वहीं अनुप्रास शब्द का प्रयोग किया है। उपमा को भी एक अभिन्न अंग दिया गया है।

"एक जन्म से बंजर पडी़ धरती को हरी-भरी कर दी थी गीता ने।" प्रस्तुत वाक्य में उपमा का प्रयोग वाक्य को सुसज्जित कर दिया है। वहीं वाक्य के माध्यम से लेखक ने हर्ष भाव को भी प्रस्तुत किया है। "उन्होंने साहित्य की चिन्ताओं को मनुष्य की मुक्ति की चिन्ताओं से जोड़ा और बताया कि हमारे अस्तित्व के सरोकारों के सवाल भी उन्ही शक्तियों से नाभिनालबद्ध हैं, जो समाज को बनाती-बिगाड़ती और बदलती रहती है। लोगों, अपनी सारी जिन्दगी में मैंने ऐसा वक्त नहीं देखा जिसने अपनी जबान से कलम का काम लिया हो, जो अपनी वाणी से सुननेवालों के दिल-दिमाग पर लिखता रहा हो। एक ही विषय पर कई-कई व्याख्यान और हर व्याख्यान में हर बात नये नुक्से नई बात, नई जानकारियाँ जहाँ सभा कानों से ही नहीं, आँखों से भी सुन रही हो।"

प्रस्तुत वाक्यांश में काशीनाथ सिंह ने वाक्य विन्यास को ओजात्मक रस से लेपित करते हुए भाषा-शैली को अग्रिम दर्जे में प्रस्तुत किया है। यहाँ पर भाषा साहित्य के अनुरूप उसी प्रकार से सजी हुई है और भाषा का स्तर उच्चतम स्तर पर रचा गया है। शब्द विन्यास और भाषा प्रवाह भी अखिंडत है।

"डोंट थिंक, लुक"! सोचो मत, देखों। जो देखते हो-वही लिखो। सोचोगे तो सोचते रह जाओगे। सोचनेवाला आदमी टेस्ट ट्यूब में पड़ी मक्खी की तरह होता है जो भिनभिनाती हुई उसी में चक्कर काटती रहती है इसलिए सोचो मत लिखो।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक काशीनाथ जी ने 'एंग्लो-इंडियन' यानि 'देशज-अंग्रेजी' भाषा शैली को वाक्य विन्यास से विस्तृत किया है, वहीं उपमाओं को सहारा देते हुए वाक्यों में नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। भाषा शैली पूर्णतः पर्यवेक्ष्णात्मक एवं सीखप्रद है। वहीं भाषा-प्रवाह अविरल रूप से चलायमान है।

"बोले एक शब्द है 'सतृण अभ्याहारी'। यह राजशेखर का शब्द है यानि स $ तृण अभि $ हारी। अर्थात ऐसा आलोचक जो सब खाए जो मिल जाए।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने अनुप्रास, तत्सम एवं संस्कृत भाषा का उचित समाकलन कर उसे अर्थ लगा दिया है। यहाँ पर संस्कृत भाषा के माध्यम से उपमा को उजागर किया गया है।

"दुविधा पैदा कर दे दिलों में
ईमानों को दे टकराने
बात वो कर ऐ इश्क कि जिससे
सब कायल हों, कोई न माने"

प्रस्तुत छंदों में उर्दू भाषा का प्रयोग किया गया है, जो भाषा शैली की विविधता का सजीव रूप प्रस्तुत करती है। जैसा कि काशीनाथ सिंह की रचनाओं में अक्सर देखने को मिलता है।

"10 अक्टूबर 1997
विजयादशमी से एक दिन पहले"

प्रस्तुत वाक्यांशों में लेखक ने बिम्ब प्रयोग को उचित स्थान दिया है। क्योंकि भाषा-शैली में बिम्ब प्रयोग का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके बिना वाक्य विन्यास अधूरा प्रतीत होता है। उसी तरह

'विजयादशमी' विशिष्ट शब्द का प्रयोग भी भाषा शैली को अति विशिष्ट बना देती है।

"कबँहुक मन बिसराम न मान्यो"

प्रस्तुत छंद तुलसीदास की विनयपत्रिका से ली गई है। इस छंद के द्वारा लेखक काशीनाथ जी ने अपने संस्मरण में खड़ी बोली का समायोजन भी किया है। यह भाषा शैली के प्रयोग का विशिष्ट रूप है। यह छंद वाक्यांश को भावप्रद एवं सुगठित करने में पूरा योगदान देती है।

"सुननेवाले थे समूचे जनपद से उन्हें देखने की लालसा लिये पन्द्रह-बीस हजार बूढ़े, जवान, किशोर, बच्चे। इनमें से जाने कितनों के लिए वे 'नामवर', कितनों के लिए 'भइया', कितनों के लिए 'चाचा' और कितनों के लिए 'गुरुजी'। नामवर का तो सिर्फ गला रूंध गया था। लेकिन भीड़ देर तक हिचकियाँ और सिसकियाँ लेती रही।"

प्रस्तुत वाक्यांश में लेखक ने भाषा शैली को अत्यंत करुण रस से मिश्रित कर भावात्मक भंगिमा में प्रस्तुत किया है। वहीं उपमाओं का प्रयोग भाषा शैली को सुसज्जित कर रही है। 'भइया', 'चाचा', 'नामवर' और 'गुरु जी' इन सभी उपमाओं के माध्यम से लेखक ने वाक्यांशों को सुसज्जित कर प्रस्तुत किया है।

अधोलिखित वाक्यांशों एवं उसकी भाषा शैली, बिम्ब, भाव, भंगिमा, रसात्मक एवं भावात्मक अभिव्यक्तियों को देखकर यह आकलन किया जा सकता है कि काशीनाथ सिंह की संस्मरण विधा 'घर का जोगी जोगड़ा' भाषा शैली के अनुरूप अपने आप में एक अनूठी विधा है। जिसमें लेखक ने एक पूर्ण भाषा शैली के सारे घटकों को सही तरीके से सही जगह एवं सही भाव में समेकित किया है। अतएव यह रचना उनकी भाषा शैली की कुशलता को दर्शाती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा ही वह महत्वपूर्ण घटक है जिसके कारण काशीनाथ सिंह के संस्मरण इतने आकर्षक जान पड़े हैं। भाषा के विविध प्रयोगों के कारण ही प्रस्तुत संस्मरण इतने रोचक तथा पठनीय हुए हैं। इन संस्मरणों में लेखक के भाषा की महीन कारीगरी देखने को मिलती है। काशीनाथ सिंह के संस्मरणों की भाषा विषय के संदर्भ में श्यामसुदुर घोष ने लिखा है-

"यह भाषा की प्रदर्शनी या कलाबाजी नहीं है, यह विषय और सन्दर्भ के अनुसार भाषा का करवटें लेना है। वस्तभुंगी के प्रति भाषा का अनुकूलन है जिसके बिना भाषा एकरस, ठस और सपाट होकर रह जाती है। काशीनाथ की भाषा जिंदा भाषा है- जंगली नाग की तरह फन भी फैलाती है। पूँछ की बल खड़ी भी हो जाती है, झपट्टा भी मारती है, रगेदती भी है, दौड़ती भी है और जब चैन और मस्ती में होती है तो लहरियादार चाल भी चलती है।"

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि काशीनाथ सिंह की संस्मरणात्मक भाषा भावानुसरिणी भाषा है जो अपने पात्र प्रसंग और विवेचन के अनुरूप अभिजात्य रूप धारण करती है अथवा मध्यवर्गीय संस्कार एवं निम्नवर्गीय लोकजीवन की बेलौस प्रयोगधर्मिता को दर्शाती है। काशीनाथ सिंह एक शब्दसिद्ध रचनाकार है इसमें कोई संदेह नहीं।

संदर्भ सूची :

1. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1992 पृ. 19
2. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 125
3. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 87
4. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 87
5. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 160
6. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 160
7. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 174
8. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 82
9. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 19

10. काशीनाथ सिंह, याद हो कि न याद हो, पृ. 168.
11. काशीनाथ सिंह, आछे दिन पाछे गए, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2004, पृ. 84.
12. काशीनाथ सिंह, आछे दिन पाछे गए, पृ. 101.
13. काशीनाथ सिंह, आछे दिन पाछे गए, पृ. 113.
14. काशीनाथ सिंह, आछे दिन पाछे गए, पृ. 131.
15. काशीनाथ सिंह, आछे दिन पाछे गए, पृ. 132
16. काशीनाथ सिंह, आछे दिन पाछे गए, पृ. 148.
17. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2006, पृ. 33.
18. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा, पृ. 39.
19. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा,पृ. 59.
20. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा,पृ. 72.
21. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा, पृ. 75.
22. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा पृ. 88.
23. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा, पृ. 74.
24. काशीनाथ सिंह, घर का जोगी जोगड़ा, पृ. 95.

एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग,
फैकल्टी ऑफ़ साइंस एंड ह्यूमैनिटीज,
एसआरएम इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी,
कॉटानकोलेथूर

8

कहानीकार के रूप में भीष्म साहनी पर एक नजर

योरोवा सबाहत

भारतीय साहित्य विश्व के सबसे पुराने साहित्य में एक होने के साथ ही भारत का इतिहास सबसे पुराने इतिहासों में से एक है। इसके विकास के इतिहास के पन्ने विश्व के सैकड़ों महान और प्रसिद्ध लेखकों के नामों से सुशोभित है। भीष्म साहनी प्रसिद्ध लेखकों में से एक हैं जिनकी गतिविधियाँ "भारत विकासशील लेखकों का संघ" में निकटता से संबंधित हैं। कहा जा सकता है कि प्रेमचंद (1880-1936) के बाद इस साहित्यिक प्रतिभा ने इस संघ को संभाला। उन्होंने इस सम्मेलन की गतिविधि के दायरे में न केवल अनुभवी बल्कि युवा लेखकों को भी रखने की बहुत कोशिशें की हैं। भीष्म साहनी (1915-2003), भारतीय फिल्मों के प्रसिद्ध अभिनेता बलराज साहनी (1913-1973) के भाई, 20 वीं शताब्दी में भारतीय साहित्य के इतिहास के प्रमुख लेखकों में से हैं। भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त, 1915 को औपनिवेशिक भारत के रावलपिंडी शहर में, "ब्रह्म समाजिक में से सदस्यों के समाज" श्री बाबू के परिवार में हुआ था। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा हिंदी और संस्कृत में पारिवारिक वातावरण में प्राप्त की। स्कूल में उन्होंने अपनी मातृभाषा हिंदी के अलावा उर्दू और अंग्रेजी भी सीखी। महान मुगलों के शासनकाल के दौरान, बुद्धिजीवियों और कुछ धन वाले प्रत्येक परिवार सहित हिंदुओं ने अपने बच्चों के लिए अरबी और फारसी भाषाओं का अध्यायन आवश्यक मानते थे। जब से उर्दू भाषा प्रकट हुई और धीरे-धीरे शक्तिशाली और प्रभावशाली हो गई, साथ ही शासक मुसलमानों का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया, लोग ने उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं के अध्ययन पर अधिक ध्यान देने लगे। इस मुद्दे की समझ ही थी कि भीष्म साहनी की अंग्रेजी भाषा और साहित्य में बहुत रुचि गई। उन्होंने लाहौर के राजकीय कॉलेज में प्रवेश लिया और सफलतापूर्वक स्नातक की उपाधि प्राप्त करके अंग्रेजी साहित्य की विशेषता में काम मानविकी का डिप्लोमा प्राप्त की । भीष्म साहनी के लगातार रचनात्मक कार्यों-कलात्मक कार्यों में लगे रहने से पहले, उन्होंने कुछ समय के लिए एक शिक्षक और पत्रकार के रूप में काम किया। उन्होंने सोवियत संघ में पब्लिशिंग हाउस "प्रोग्रेस" मॉस्को में कई वर्षों (1957-1963) तक अनुवादक के रूप में भी काम किया [5, 228]. वे कलात्मक कार्यों की भाषाओं और सूक्ष्मताओं को अच्छी तरह जानते थे। भीष्म साहनी और उनके युग के सभी लेखक, यदि वे गद्य लेखक हैं, तो वास्तव में कहानी और उपन्यास लिखने में लगे रहे हैं। ऐसे ही लेखकों के प्रयास से 20 वीं शताब्दी में भारतीय साहित्य को अन्य भारतीय साहित्यों में विशेष स्थान प्राप्त हुआ। लघुकथा और उपन्यास जैसी साहित्यिक विधाओं का अभूतपूर्व विकास लेखक के जीवन काल में देखा जा सकता है। भीष्म साहनी, इस तथ्य के बावजूद कि 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, भारतीय साहित्य में कई नई साहित्यिक प्रवृत्तियाँ थीं, जिनमें "नई कहानी" "जिद्दी कर्ता" "बौद्धिक" शामिल हैं। "कहानी", "सरल कहानी" "सक्रिय कहानी" आदि जो 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की कहानी से संबंधित थी और एक "फैशन" के रुझान के रूप में बहुत उत्साह। एक प्रमुख लेखक के रूप में प्रेमचंद की कहानी कहने की शैली हमेशा उनके लिए एक महत्वपूर्ण आदर्श रही है। भीष्म साहनी ने एक लघु कथाकार और उपन्यासकार के रूप में अपना नाम बनाया और मुख्य रूप से एक लघु कथाकार के रूप में पहचाने जाते हैं। लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि 1973 में लिखे गए उपन्यास "तमस" से उनकी प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई थी। यह उपन्यास, जिसका शाब्दिक अर्थ "अंधेरा" है,

1947 में भारत और पाकिस्तान में भारत के विभाजन के दौरान धार्मिक संघर्षों के मुद्दों को समर्पित है। यह मुद्दा आज भी भारतीय समाज के दबाव वाले मुद्दों में से एक है, क्योंकि समय-समय पर भारत के कुछ हिस्सों में मुसलमानों और हिंदुओं के बीच गलतफहमियां बनी रहती हैं। भीष्म साहनी को 1975 में "नेशनल फेडरेशन ऑफ प्रोग्रेसिव राइटर्स ऑफ इंडिया" जैसे प्रतिष्ठित संगठन के महासचिव के रूप में चुना गया, जब वे एक लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। वह पूरे भारत में एक प्रतिभाशाली कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं। [2, 303]

भीष्म साहनी को कई पुरस्कार मिले हैं, जिनमें "नीलुफर इंटरनेशनल अवार्ड", "जवाहिरलाल नेहरू अवार्ड" और "इंडियन एकेडमी ऑफ लेटर अवार्ड" जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कार शामिल हैं। इन प्रसिद्ध लेखक की मृत्यु 2003 में दिल्ली में हो गई है। हालाँकि भीष्म साहनी ने कई वर्षों तक एक अनुवादक और अभिनेता के रूप में काम किया और अपनी प्रतिभा दिखाई, लेकिन उनका मुख्य ध्यान लेखन, यानी कलात्मक कार्यों का निर्माण करना था। वह पूरे भारत और विदेशों में एक प्रतिभाशाली कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। भीष्म साहनी की रचनाओं के पहले संस्करण से ही भारतीय और विदेशी दोनों पाठकों और शोधकर्ताओं ने उन्हें एक होनहार लेखक के रूप में देखा है, इसलिए उनके व्यक्तित्व और कार्यों पर ध्यान लगातार बढ़ा है। हमें उन शोधकर्ताओं के बारे में कुछ नहीं कहना है जिन्होंने भारत में भीष्म साहनी का अध्ययन किया और शोध प्रबंध या लेख लिखे। हम केवल इसका उल्लेख करते हैं कि वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, अवस्थी मोहन, विजयेंद्र स्नातक, रामस्वरूप चतुर्वेदी, श्यामचंद्र कपूर और कुछ अन्य सहित हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले सभी साहित्यिक विद्वान ने निश्चित रूप से भीष्म साहनी का उल्लेख किये हैं और उनकी कला को उच्च अंक दिये हैं।

भीष्म साहनी की रचनाएँ रवीन्द्रनाथ ठाकुर और प्रेमचंद की रचनाओं की तरह भी विदेशी भाषाओं में अनुवादित और प्रकाशित हुई हैं। 1957 में पहली बार भीष्म साहनी की "पदक" नाम कहानी रूसी भाषा द्वारा भारतीय अध्ययन के अनुवाद में प्रकाशित हुई। कुद्रीवत्सेवा और इजराइल समोइलोविच रैबिनोविच की रचनाएँ "स्टोरीज़ ऑफ़ इंडियन राइटर्स" पुस्तक में प्रकाशित हुई हैं। [5, 305]

इसके बाद भीष्म साहनी की कहानियों और उनकी अन्य रचनाओं का नियमित रूप से रूसी और रूसी से सोवियत गणराज्यों की कुछ भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन हुआ। भीष्म साहनी के जीवन और कार्य के अनुवाद, अध्ययन और प्रचार-प्रसार में व्लादिमीर चेर्निशेव सहित रूसी इंडोलॉजिस्ट का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। हम आपको याद दिलाते हैं कि व्लादिमीर चेर्निशेव ने अपने अनुवादों के माध्यम से दर्जनों समकालीन भारतीय लेखकों को सोवियत पाठकों से परिचित कराया। उन्होंने 1959 में भीष्म साहनी की रचनाओं का अनुवाद करना शुरू किया। उसी समय, व्लादिमीर चेर्निशेव ने भीष्म साहनी की कहानी "रक्त की बूंद" का अनुवाद किया, जो "भारतीय लेखकों की कहानियां" संग्रह में प्रकाशित हुई थी। वहीं कहानी 1959 में "यूनोस्ट" पत्रिका में फिर से प्रकाशित हुई। उसी वर्ष, यह कहानी "भारत के बच्चे" संग्रह में फिर से प्रकाशित हुई। "यूनोस्ट" पत्रिका के अनेक पाठक थे। पत्रिका ने शीघ्र ही लेखक को बहुत प्रसिद्ध कर दिया। इस तरह, एक ही समय में, लेखक ने कई पाठकों को पाया और शोधकर्ताओं का ध्यान अपनी और अपनी रचनाओं की ओर आकर्षित किया। उसके बाद, व्लादिमीर चेर्निशेव सोवियत संघ की अन्य प्रभावशाली साहित्यिक पत्रिकाओं के मंच का उपयोग करने की कोशिश की। सोवियत सरकार की विचारधारा ऐसी थी कि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने विदेशों के प्रमुख लेखकों के लिए अपने पृष्ठ खुले रखे। यही कारण है कि व्लादिमीर चेर्निशेव भीष्म साहनी को रूसी भाषी पाठकों से परिचित कराते रहे। व्लादिमीर चेर्निशेव द्वारा, भीष्म साहनी की कहानियों का अनुवाद, जैसे "भाग्य रेखा"

(«सोवेत्स्की वोस्तोक» पत्रिका-1960 नंबर 5), "जीवन की शुरुआत" ("शांति की रक्षा में" पत्रिका - 1960 नंबर 8), "भगवान का कोप" (1960) और अन्य कहानियों के साथ-साथ उपन्यास "बसंती" का रूसी अनुवाद "दिल्ली के बाहरी इलाक़े की लड़की" (1982) और अन्य कार्य हैं [3, 116].

व्लादिमीर चर्निशेव ने "बसंती" उपन्यास की प्रस्तावना लिखी और भीष्म साहनी एवं उनके उपन्यास पर टिप्पणी की। रूस के भारतीय विशेषज्ञ जैसे इरिना कुदरयवसेवा और निकोलय टॉल्स्टॉय ने भीष्म साहनी की कई कहानियों का अनुवाद किया। भीष्म साहनी की कहानियों का अनुवाद तुर्कमेन, कज़ाख, किर्गिज़, ताजिक और अन्य भाषाओं में किया गया है। निकोलय टॉल्स्टॉय ने भीष्म साहनी की कहानी "पारिवारिक सम्मान" का अनुवाद "नेवा" पत्रिका में किया है। भीष्म साहनी की "चीफ की दावत" नामक कहानी पहली बार ताजिक भाषा में 1956 में "ताजिक साहित्य" पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 31 जून, 1960 के समाचार-पत्र "कोम्सोमोल ताजिकिस्तान" में भी भीष्म साहनी की "भाग्य रेखा" नामक कहानी रूसी भाषा में जुरएवा ने अनुवाद किया। भीष्म साहनी की एक ओर कहानी जिसे रूसी में "जीवन की शुरुआत" कही जाती है, जिसका अनुवाद ताजिक अनुवादक खुजाएव ने की है, सन 1961 में "ताजिकिस्तान की महिलाएं" नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह कहने योग्य बात है कि ये सभी अनुवाद रूसी से ताजिक भाषा में किये गये हैं।

उसके बाद भीष्म साहनी की रचनाएँ लगभग चालीस वर्षों तक ताजिकिस्तान में प्रकाशित नहीं हुईं। इसी तरह, 2002 में दुशांबे में "हिंदी कहानियां" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस संग्रह में भीष्म साहनी के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई है और लेखक की एक कहानी "माता विमाता" प्रकाशित हुई, जिसका ताजिक इंडोलॉजिस्ट हबीबुल्ला राजाबोव द्वारा हिंदी भाषा से ताजिक भाषा में अनुवाद किया गया था। हबीबुल्ला राजाबोव ने अपने वैज्ञानिक कार्य का एक अध्याय "भारतीय कहानिकारों की तीन पीढ़ियां" नामक में भीष्म साहनी को भी समर्पित किया, जहाँ उन्होंने साहनी के बारे में अधिक विस्तार से बात की है और छात्रों के विश्लेषण के लिए "मेड इन इटली" नामक उनकी एक कहानी का अनुवाद तैयार की है। उन्होंने 1998 में भीष्म साहनी की कई कहानियों का विश्लेषण "आधुनिक भारतीय कहानी का गठन और विकास" पुस्तक में भी किया [4, 129]. इस पुस्तक में भीष्म साहनी का उल्लेख कई पृष्ठों में हुआ है। अन्य बातों के अलावा भीष्म साहनी को पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में अन्य लेखकों में सूचीबद्ध किया गया है। सन 2001 में "भारतीय कहानिकारों की तीन पीढ़ियां" के नाम से हबीबुल्ला राजाबोव की पुस्तक प्रकाशित हो चुकी। इस पुस्तक में जैसे कि नाम से ही स्पष्ट है लेखक ने भारतीय कहानीकारों की तीन पीढ़ियों के बारे में एक राय बनाई है। भीष्म साहनी को पहली या पुरानी पीढ़ी में शामिल करके अपने काम का एक हिस्सा इस प्रसिद्ध लेखक को समर्पित किया है। यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि हबीबुल्ला राजाबोव की इस पुस्तक में पहली पीढ़ी में यशपाल, भीष्म साहनी और उपेंद्रनाथ अश्क जैसे केवल तीन लेखक शामिल हैं। भीष्म साहनी भारतीय साहित्य में 20 वीं शताब्दी के सबसे प्रसिद्ध लेखकों में से एक हैं। भीष्म साहनी के बारे में जीवनी संबंधी जानकारी के अलावा, इस पुस्तक में भीष्म साहनी पर प्रेमचंद और यशपाल के प्रभाव के बारे में भी बात करती है। इस शोध से यह पता चलता है कि भीष्म साहनी, जो कुछ भी लिखते हैं, वे एक सच्चे व्यक्ती और सबसे बढ़कर, एक सरल एवं मेहनती इंसान हैं। भीष्म साहनी की साहित्यिक विरासत बहुत समृद्ध है। लघुकथाओं और उपन्यासों के अतिरिक्त लेखक ने आधुनिक भारतीय कहानियों के आलोचनात्मक मुद्दों पर लेखों की एक और श्रृंखला समर्पित की है, जिसमें लेखक ने स्वयं को एक साहित्यिक विद्वान के रूप में प्रस्तुत किया है। लेकिन उनकी रचनात्मकता के मुख्य भाग में कहानियाँ हैं, जिनकी संख्या सौ से अधिक है।

संग्रह में लेखक की कहानियाँ "भाग्य रेखा", "भथकारी राख", "पहला पथ", "पथरिया", "शोभा यात्रा", "मेरी प्रिया कहानियाँ" एकत्रित की गई हैं [8].

उनकी कहानियों का आधार भारतीय समाज में मध्यवर्गीय लोगों का जीवन है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, व्लादिमीर चेर्निशेव ने, जो रूसी भाषा में साहित्यिक कृतियों के अनुवादकों में से एक हैं, इस मत की सत्यता का उल्लेख किया और कहा "साहनी की कहानियाँ आम भारतीयों के जीवन के बारे में, छोटी-छोटी खुशियों और कई दु:खों के बारे में बताती हैं। किसानों और शहरी लोगों के निचले वर्गों का जीवन, महिलाओं का भाग्य, भूख, प्रकृति के खिलाफ लोगों का असमान संघर्ष और जमींदारों का उत्पीड़न, यह सब उनकी कहानियों के पन्नों में झलकता है [8, 186]. चूँकि ये शब्द भीष्म साहनी के कार्यों की सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं, अन्य शोधकर्ताओं, जिनमें "नई अवधि में भारतीय साहित्य" पुस्तक के लेखक हबीबुल्ला राजाबोव शामिल हैं, इसे भीष्म साहनी के कार्यों की विशिष्ट विशेषताओं के रूप में व्याख्यायित किया।

इस प्रकार 20 वीं सदी के आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद, यशपाल और उपेन्द्रनाथ अश्क के बाद भीष्म साहनी जैसे प्रसिद्ध भारतीय गद्य लेखक थे, जिन्होंने अपनी उच्च सामग्रीवाली कृतियों से, जिनमें उस समय के सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे शामिल थे और 21वीं सदी में उनकी प्रासंगिकता बनी रही, भारतीय संस्कृति का अधिक विकास किये हैं। उपन्यास और कहानी को बहुत ऊंचे स्तर पर ले गए हैं । हिंदी गद्य लेखकों की आज की पीढ़ी, विशेषकर प्रगतिशील साहित्य की ओर रुझान रखने वाले भीष्म साहनी की लेखन शैली का सदुपयोग कर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. बरनिकोव ए. पी। भारतीय भाषाशास्त्र. मॉस्को, 1959. - 334 पृ.
2. राजाबोव हबिबुल्ला. नये युग में भारतीय साहित्य. दुशांबे, 2018. - 540 पृ.
3. राजाबोव हबिबुल्ला. भारतीय कहानीकारों की तीन पीढ़ियाँ। दुशांबे, 2001. - 272 पृ.
4. राजाबोव हबिबुल्ला. आधुनिक भारतीय कहानी का गठन और विकास. 1998. - 224 पृ.
5. चौहान शिवदानसिंह. हिंदी साहित्य के इतिहास पर निबंध. एम., 1960. - 322 पृ.
6. चेलिशेव ई. पी. हिन्दी साहित्य। मॉस्को, 1967. - 328 पृ.
7. व्लादिमीर चेर्निशेव. आघुनिक भारत में हिन्दी साहित्य, मॉस्को, 1998. – 264 पृ.
8. कैलाश चंद्र भाटिया. व्यवहारिक हिंदी. नई दिल्ली, 1989. - 184 पृ.
9. भीष्म साहनी. मेरी प्रिया कहानियाँ. नई दिल्ली, 1989. - 128 पृ.
10. शिवकुमार मिश्र. यथार्थवाद. दिल्ली, 1975.- 280 पृ.
11. श्यामचन्द्र कपूर. हिंदी साहित्य का इतिहास (पहला संस्करण). नई दिल्लीः संस्थान प्रकाशन. 1989.-348 पृ.
12. तारक नाथबाली. हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास / डॉ. तारक नाथ बाली. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन - 2008. - 528 पृ.

वरिष्ठ शिक्षिका,
भारतीय भाषाशास्त्र विभाग,
ताजिकिस्तान राष्ट्रीय विश्वविद्यालय,
ताजिकिस्तान

9

वर्तमान भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य और समरसता

डॉ. कैलाश गहलोत

हिंदी साहित्य के अंतर्गत भक्ति काल को स्वर्ण युग के नाम से अभिहित किया जाता है। सम्पूर्ण भक्ति साहित्य के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि संत साहित्य की विवेचना हर युगीन परिस्थितियों में प्रासंगिक रही है, यही कारण है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद्वी वास्तविक हिंदी साहित्य का आरम्भ भक्ति साहित्य से ही स्वीकार करते है।

भक्ति साहित्य की रचना करने वाला चाहे कोई भी हो, पुरुष हो या नारी, हिंदू हो या मुसलमान, ब्राह्मण हो या शुद्र, वे चाहे उत्तर के हो या दक्षिण के सभी को संत कहा जाता है। संत काव्य ने प्राचीन परंपराओं के आधार पर विश्व धर्म या लोक धर्म या लोक वेद को मिलाकर जीवन की नवीन राहों का अन्वेषण किया। संत काव्य का आधार है 'लोकानुभव' और 'लोकानुभूति।' संत काव्य में वैदिक साहित्य का आदर नहीं है। उनका दृष्टिकोण बहुत कुछ बौद्ध धर्म के महायान दर्शन से निर्धारित है। महायान से मंत्रयान, मंत्रयान से वज्रयान या तांत्रिक बौद्ध धर्म सामने आया। वज्रयान की प्रतिक्रिया में नाथ संप्रदाय का विकास हुआ और उसके भीतर से संत काव्य अवतरित हुआ।

भारतीय सामाजिक और धार्मिक परिदृश्य के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि संत साहित्य और समरसता की जड़े भक्ति आंदोलन में निहित है। भक्ति आंदोलन को उसके अपने विविध रूपों में भक्ति की विकास यात्रा के मार्ग में देखा जा सकता है। बच्चन सिंह के अनुसार "इन सभी भक्ति आंदोलनों से जनता में आत्मविश्वास जागा और उच्च वर्ग के सामने निम्न वर्ग, जिसमें स्त्री भी शामिल है, अपने प्रति सम्मान का भाव लेकर उठ खड़ा हुआ।"[1] सातवीं शताब्दी में इस्लाम जब भारत पहुंचा तो उस समय दक्षिण भारत में आलवार भक्तों का आंदोलन पूरी शक्ति से चल रहा था। भारत में आलवार संतो की परंपरा उस समय शुरू हुई थी जब अरब में इस्लाम का जन्म भी नहीं हुआ था। भारत के सन्दर्भ में भक्ति, ईश्वर में परम अनुरक्ति के रूप में रही है इसलिए भक्ति पर किसी प्रकार के विदेशी प्रभाव को मनाना या स्वीकार करना मुश्किल जान पड़ता है। राम उपासना का आरंभ आलवार भक्तों ने किया था। रामानुज तथा रामानंद ने इसी परम्परा को आगे बढ़ा कर उसे निखार प्रदान किया। भक्ति के दक्षिण संदर्भ में एक बात यह भी महत्वपूर्ण है कि तमिल में रामायण पहले लिखी गई, हिंदी में रामायण बाद में लिखी गई। भक्ति काव्य के अंतर्गत निर्गुण धारा तथा सगुन धारा का काव्य भारत के सामंती समाज की सीमाओं का अतिक्रमण करता दिखाई देता है। यह भक्ति काव्य के समाजशास्त्र की शक्ति ही है कि वह जन आंदोलन बन सका। भक्ति काल हर युग के प्रश्नों से एक खास अर्थ संदर्भ को लेकर टकराता है, इस रचनाशीलता से उपजी ऊर्जा में एक जीवन सत्य अनेक रूपों में ध्वनित, प्रतिध्वनित है और उसका मूल्य है 'प्रेम।'

संत तथा संतों का काव्य 'प्रेम' को आधार बनाकर मानव मुक्ति तथा ईश्वर भक्ति का मार्ग सुझाते हैं। संत साहित्य का सामाजिक और आर्थिक आधार जुलाहों, मछुआरों, किसानों, कारीगरों, व्यापारियों का भौतिक जीवन है। संत काव्य धारा भारतीय संस्कृति की परिस्थितियों से उपजी है, उनकी भाषा किसी एक प्रदेश की भाषा न होकर सभी प्रदेशों की खिचड़ी भाषा, संध्या भाषा या सधुक्कडी भाषा है। संत काव्य की आधार भूमि के रूप में यह बात दृष्टव्य है कि "संत मत में ऐसे ईश्वर की भावना मानी गई, जो हिंदू मुसलमानों के धर्म में समान रूप से ग्राह्य हो सके। उसके कोई मुख माथा, रूप-कुरूप नहीं है, वह एक है।

वह निर्गुण और सगुण दोनों से परे रह कर पुष्प की सुगन्धि से भी सूक्ष्म है। वह सर्वशक्तिमय, सर्वव्यापक और अखण्ड ज्योति स्वरूप है। उसे जानने के लिए आत्मज्ञान की आवश्यकता है। हिंदुओं का राम और मुसलमानों का रहीम उसी ईश्वर का रूपान्तरण मात्र है। उसका ध्यान ही महान धर्म है।"[2] संतों का ईश्वर, धर्म और जाति के नाम पर एकरस है, वहाँ इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं है। यही एकरसता उस समरसता की संवाहक है, जो आज भी हमें भारतीय समाज में प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती है।

संत काव्य के संदर्भ में सूर्य प्रसाद दीक्षित का मत है कि "इस काव्य से जुड़े हुए अधिकतर कवि समाज के शोषित वर्गों के प्रतिनिधि बनकर उभरे हैं कबीर जारज थे, सूर और जायसी विकलांग थे, तुलसी जन्म से भूखमरे (भिक्षोपजीवी) और उपेक्षित थे। रविदास, धुनियां, धन्ना, सेन आदि कामगर थे। मीरा राज परिवार से जुड़ी थी लेकिन मौत के साए में जी रही थी, इसलिए इन कवियों ने सबसे अधिक स्वर दिया है करुणा को, इसलिए कि वही उनका भोगा हुआ यथार्थ था। विषम परिस्थितियों में जन्मे लोग प्रायः प्रतिशोधातुर या नकारवादी हो जाते हैं किंतु इन कवियों ने अपनी चित्तवृत्ति का उदात्तीकरण कर लिया था। इन्होंने संतत्व का आश्रय लिया और आध्यात्मिक बोध के सहारे मानुष भाव को बढ़ावा दिया।"[3]

भारतीय चिंतन जगत में नवजागरणों का एक लंबा सिलसिला प्राप्त होता है। भारतीयता का तर्कवाद तथा विवेकवाद परिस्थितियों का शिकार होकर शिथिल जरूर पड़ गया था, लेकिन खत्म कभी नहीं हुआ। निराशा भारतीयों का जातीय मनोभाव कभी नहीं रहा। शंकराचार्य ने भक्ति की जो महत्ता छीन ली थी, उसे रामानुजाचार्य ने नए पाठ विमर्श के साथ पुनः स्थापित किया। अद्वैत और भक्ति आंदोलन भारतीय संस्कृति के प्राण प्रवाह रहे हैं। कबीर ने रूपकों द्वारा योगमार्ग, वैष्णव मत आदि की लोकवादी व्याख्याएं प्रस्तुत की, जिससे इनमें जनविश्वास दृढ़ हुआ। डॉ रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'परंपरा का मूल्यांकन' में कहा है कि "मलिक मुहम्मद जायसी कुरान के भाष्यकार नहीं है, न कबीर और दादू त्रिपिटकाचार्य है, न सूर और तुलसी वेद, गीता या मनुस्मृति के टीकाकार है। संत साहित्य की अपनी विशेषताएं हैं जो मूलतः किसी प्राचीन धर्म ग्रंथ पर निर्भर नहीं है।" इससे यह स्पष्ट होता है कि संत साहित्य का अपना जीवन दर्शन है, जिसका उद्देश्य लोक कल्याण है और इसी कल्याण भी भावना का मूल आधार समरसता की स्थापना में समाहित है।

सामाजिक समरसता के संदर्भ में रामानंद का दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण है "रामानंद ने शास्त्रों के आधार पर जाति बंधन के महत्व को व्यर्थ सिद्ध किया। उन्होंने भक्ति की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध कर प्रत्येक जाति के लिए वैष्णव धर्म का दरवाजा खोल दिया। उन्होंने भक्ति और ज्ञान प्राप्ति के लिए सामाजिक बंधन को तुच्छ सिद्ध कर दिया। नाभादास के अनुसार सभी जाति के भक्त उनके शिष्य थे।"[4] भक्ति का अपना एक विकसित सौंदर्य शास्त्र है, काव्यशास्त्र है, दर्शन शास्त्र है। यह शंकराचार्य के निर्गुण से टकराकर रामानुजाचार्य में नए भाष्य के साथ सामने आया है। इसे भक्ति काल के चारों आचार्यों का समर्थन प्राप्त है और इसके मेरुदंड है 'रामानंद।' निर्गुण-सगुण, कबीर-तुलसी के सही संयोजन से जो रचनाशीलता फूटी है उसने भारतीय समाज को सर्वोत्तम सरोकार प्रदान किये है। भक्ति के इस समाजशास्त्र में आधुनिक मनुष्य के लिए प्रखर बौद्धिक प्रयत्न का मूल्यवान खजाना निहित है। लोक संस्कृति का लोक शास्त्र एवं लोक वेद का पक्ष ही इसका मूल आधार है। गोस्वामी तुलसीदास के पार्वती मंगल, जानकी मंगल, विनय पत्रिका आदि में लोक समाज की खुली उपस्थिति अपने पुरे रूप में मौजूद है।

संतों के अनुसार प्रेम ही मानवीय समरसता का आधारभूत गुण है। कबीरदास कहते है कि स्वामी और सेवक एकमत हैं, दोनों मन ही मन (प्रेम से ही) मिलते है। कबीर का स्वामी या ईश्वर चतुराई से प्रसन्न नहीं होता, वह तो मन के भाव से रीझता है। दादू कहते है

कि प्रेम ही भगवान की जाति है, प्रेम ही भगवान की देह है। प्रेम ही भगवान की सत्ता है, प्रेम ही भगवान का रंग है। विरह का मार्ग खोजकर प्रेम को पकड़ो, लौ के रास्ते जाओ, दूसरे रास्ते पैर भी न रखना।

'इश्क अलह की जाति है इश्क अलह का अंग।
इश्क अलह औजूद है इश्क अलह का रंग।।'
(संत दादूदयाल)

तुलसीदास कहते है कि भगवान भक्त पर ऐसी प्रीति करते है कि अपनी प्रभुता भूलकर भक्त के वश हो जाते है, यह सदा की रीति है।

'ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत, सदा यह रीति।।'
(तुलसीदास)

सूरदास भी कहते है कि प्रेम के वश में होने के कारण ही कृष्ण ने भक्तों के लिए सारे काज कर लिए।

'प्रीति के वश्य में है मुरारी।
प्रीति के वश्य नटवर वेश धर्यो प्रीतिवश करन
गिरिराज धारी।' (सूरदास)[5]

संत काव्य के अनुसार प्रेम, समरसता की पहली अनिवार्य शर्त है। जहां प्रेम है, वहां कोई विषमता नहीं हो सकती, वहां सब कुछ स्वतः ही समरस हो जाता है। यही प्रेम का महात्म्य है।

कुंभनदास की पंक्ति 'संतन को कहा सीकरी सो काम' के संदर्भ से यह भी कहा जा सकता है कि संत कवियों में हमेशा ही राज्य के आश्रय एवं राज के सुख साधनों के प्रति विमुक्त रहने का भाव देखने को मिलता है। संत साहित्य को अस्तित्व संघर्ष के साहित्य के रूप में भी देखा जा सकता है। संतों ने अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए न केवल संघर्ष किया वरन बलिदान भी दिए। अत्याचारी आक्रमणकारियों के लिए तुलसीदास ने कहा 'आजु कि काल्हि परौं कि नरों जरि जाहि' अर्थात भरोसा रखो, यह अत्याचारी स्वतः नष्ट हो जाएंगे।

हिंदी के संत कवियों ने अपने से पूर्व में प्रचलित विविध मतों एवं संप्रदायों को एकीकृत कर उनमें सामंजस्य बिठाने का प्रयत्न किया। उन्होंने निर्गुण, सगुण, ज्ञान, भक्ति, शिव, वैष्णव, लोक, वेद आदि का समन्वय करके समरसता का संदेश दिया। भक्ति काव्य का मूल स्वर लोकमंगल की भावना है। इसी की वजह से भक्ति काव्य ने लोकप्रियता हासिल की। संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करते हुए समाज को सम्यक मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया है।

संत काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता है लोक संस्कृति से उसका जुड़ाव। उन्होंने सामान्य जीवन की संस्कृति को अभिव्यक्त किया है। इष्ट आराधना के साथ-साथ उन्होंने लोक जीवन के खान-पान, पर्व, त्यौहार, रहन-सहन आदि को भी वर्णित किया है। संतों की कविता संयुक्त पारिवारिक परिवेश की कविता है। परिवार से जुड़ाव होने के कारण यह कविता मर्यादा बोध से भी जुड़ी हुई रही और इसी वजह से यह भारतीय संस्कृति से संबद्ध रहते हुए समरसता की संवाहक बन सकी। संत कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से जाति, धर्म, वर्ण, लिंग, क्षेत्र आदि की सीमाओं का अतिक्रमण किया है। स्वामी रामानंद का उस युग में यही नारा था 'हरि को भजै सो हरि का होय।' संतों ने जाति और धर्म के नाम पर बिखरे एवं विघटित हुए समाज को संगठित करने का कार्य किया। "वस्तुतः मुगलकालीन विभाजन व्यवस्था यानी वर्ण, जाति की कट्टरता के विरुद्ध हिंदी कविता का यह प्रथम विद्रोही स्वर था। इस कविता ने पहली बार दलित चेतना को स्वर दिया। पहली बार संत कवियों में अनुसूचित वर्ग के दर्जनों कवियों को स्थान मिला। पहली बार अष्टछापी कृष्ण काव्य से जुड़े कृष्णदास जैसे अंत्यज कवि को सर्वोच्च अधिकारी का प्रतिष्ठित पद मिला। पहली बार रविदास को मीरा के गुरु के रूप में सम्मानित किया गया और पहली बार ही भक्तमाल के रचयिता नाभादास को पूरे भक्ति आंदोलन का समन्वयक स्वीकार किया गया।"[6]

किसी भी काव्य को लोक तक संप्रेषित करने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें भारतीय ग्रामीण जीवन, किसान संस्कृति, कामगार जीवन इत्यादि का प्राथमिकता के साथ वर्णन किया जाए। इस दृष्टिकोण

से भक्ति काव्य के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य मूल रूप से गोचरण का काव्य है। इसी रूप में संतों का काव्य जन काव्य बनकर प्रस्तुत हुआ है। कबीर ने यह सिद्ध कर दिया था कि कागज की लेखी की तुलना में आंखों की देखी अधिक विश्वसनीय और सत्य होती है। भक्ति काल में एक तरफ अक्षर ज्ञान से रहित कबीर जैसा प्रतिभा संपन्न कवि है तो दूसरी तरफ तुलसीदास जैसा महान पंडित कवि, दोनों में ही महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्होंने अपने काव्य को पूरी तरह से लोक की ओर उन्मुख रखने का कार्य किया है। संत काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें वीरता, नीति-निरूपण इत्यादि जैसे लोक उपयोगी विषयों को भी वाणी दी गई है। धार्मिक समन्वय के संदर्भ में कबीर को परिभाषित करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेद्वी का मत है कि "सर्व धर्म समन्वय के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत होती है वह वस्तु कबीर के पदों में सर्वत्र पाई जाती है, वह बात है भगवान के प्रति अहैतुक प्रेम और मनुष्य मात्र को उसके निर्विशिष्ट रूप में समान समझना। परन्तु आजकल सर्व धर्म समन्वय से जिस प्रकार का भाव लिया जाता है, वह कबीर में एकदम नहीं था।"[7] आज का धर्म समन्वय का भाव साम्प्रदायिकता की ओट लिए हुए है, जिसमें समय के साथ जटिलता का प्रवेश अधिक हुआ है। संतों का काव्य इसी जटिलता को समरसता में बदलने की यात्रा का काव्य है।

समाज में समरसता की स्थापना के लिए संत काव्य में हमें नीति प्रबोधन की योजना भी देखने को मिलती है। रामचरितमानस की हर पंक्ति लोगों की जबान पर रची-बसी हुई है। कबीर, जायसी, रहीम, तुलसी, वृंद, गिरधर कविराय आदि कवियों की कविता में नीति कथनों की संपन्नता दिखाई देती है। संत काव्य में जनपदीय भाषाओं को भी प्रश्रय प्राप्त हुआ, जिसमें ब्रज, अवधी, राजस्थानी आदि प्रमुख है। इन भाषाओं के प्रयोग ने भाषाई सौहार्द्र और समरसता को बढ़ावा देने का कार्य किया।

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य के संदर्भ में बात करें तो यह कहा जा सकता है कि आज समाज को सामाजिक समरसता के अनुकूल आचरण ग्रहण करने की आवश्यकता है। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार "भक्ति आंदोलन देश और काल में दीर्घकाल तक व्याप्त आंदोलन था। अभी भी भारतीय मानस पर इसका बहुत गहरा प्रभाव है। यह आंदोलन देश काल की सीमाओं में यानी ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत उदार एवं मानवीय था। जो संकीर्णताएं और क्षुद्रताएं आज भी हमारी सामाजिक विषमता का कारण है, उनसे संत साधक दूर थे। ये साधना सदाचार पर बहुत जोर देते थे। भक्ति बोध, अनुभूति और सदाचार का सम्मिलित नाम है। आज देखें, तो इनका विश्वबोध या इनकी विचारधारा पिछली मालूम पड़ती है। लेकिन मात्र विचारधारा कोई सामाजिक मूल्य नहीं बन सकती। सामाजिक मूल्य बनता है विचारधारा का आचरण। आचरण अनुकूल न हो तो समाज भिन्न अर्थ ग्रहण करता है।"[8] आज समाज में चारों ओर निराशा, भय और संत्रास का माहौल दिखाई देता है। ऐसी परिस्थितियों में संत काव्य का संदेश और भी अधिक प्रासंगिक जान पड़ता है। यहां पर एक बड़ी समस्या सत्य के सरोकार की भी है। आज यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है कि संतों के साहित्य के नाम पर हमें क्या प्रदान किया जा रहा है या उनके दिये गये संदेश हम तक किस रूप में पहुंचाए जा रहें है, सम्प्रेषण माध्यम के सही नहीं होने से भी कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। आज भक्ति एवं ज्ञान के प्रचार-प्रसार का सारा दायित्व कथा वाचकों के पास सुरक्षित है, जो कि संत साहित्य के संदर्भ में समरसता के दृष्टिकोण से पूर्ण रूप से समीचीन नहीं ठहराया जा सकता। वर्तमान परिस्थितियों में ऐसे सद् प्रयत्नों की आवश्यकता है, जिससे कि संत काव्य में निहित सच्ची समरसता को समाज में स्थापित किया जा सके। आज के सामाजिक परिवेश में सौहार्द्र स्थापित करने के दृष्टिकोण से संत काव्य के संदेश की तुलना में अन्य कोई तथ्य प्रभावी रूप से परिणाम प्रस्तुत करता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता।

संदर्भ सूची :

1. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2023 ई., पृ. 81
2. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2017 ई., पृ. 186
3. सूर्य प्रसाद दीक्षित, हिंदी साहित्येतिहास की भूमिका (भाग 2), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2008 ई., पृ. 10-11
4. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2017 ई., पृ. 213
5. हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2024 ई., पृ. 89-90
6. सूर्य प्रसाद दीक्षित, हिंदी साहित्येतिहास की भूमिका (भाग 2), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2008 ई., पृ. 14-15
7. हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, कबीर, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2018 ई., पृ. 171
8. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ई., पृ. 33.

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही, राजस्थान।

10

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : हिंदी भाषा की स्थिति

पैड़ला रवींद्रनाद

हम सब जानते हैं कि भाषा एक साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों और भावनाओं को दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। भाषा एक पहचान है, हमारे संस्कारों का संवाहक है। स्पष्ट है कि भाषा और बोलनेवाले मनुष्य का संबंध अविच्छिन्न है। विविधता से भरे इस विशाल भारत देश में विभिन्न भाषाओं के बीच में हिंदी एक विकसित भाषा है। यह भारत की शान है। हिंदी के जन्म के बारे में डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि "इसका जन्म 1100 ई. के आस-पास हुआ, और प्रारंभ में यह केवल बोल-चाल की भाषा बनी। धीरे–धीरे 1150 के आस-पास हिंदी में साहित्यिक कृतियों का प्रणयन शुरू हुआ।"[1] आज यह भाषा बोलचाल, साहित्य, पत्रकारिता, वाणिज्य, विज्ञान, खेलकूद, मनोरंजन, तथा प्रशासन में प्रयुक्त हो रही है। हम अपनी देश की इस भाषा को जानें, समझें और इस भाषा में संवाद ही नहीं शिक्षण भी प्राप्त करें। भारत की भाषाओं में हिंदी को शिरोमणि कहलाने में अत्युक्ति नहीं होनी ताकि स्वतंत्रा संग्राम में सबको एकत्रित करने में इसकी महती भूमिका रही थी। समृद्ध साहित्य का भंडार इसमें है। ज्ञान-विज्ञान के शब्दावली से भरपूर यह एक सशख्त भाषा है। इसकी बोलनेवालों की संख्या भी अधिक है। इसकी अपनी गरिमा के कारण यह भारत की राजभाषा बन गयी है।

नयी शिक्षा नीति और भारतीय भाषाओं के संदर्भ में मोनालिसा पंवार ने लिखा है - "आबादी की मातृभाषा हेने के अलावा हिंदी भारत के लगभग 90 प्रतिशत लोगों द्वारा अच्छी तरह से बोली एवं समझी जाती है।"[2] कई विरोधों का सामना करते हुए हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा की दिशा में अग्रसर है। शिक्षाविद, संपादक, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास के सचिव, अतुल कोठारी लिखते हैं कि "आज दुनिया के लगभग 170 देशों में किसी न किसी रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। ... पहले भारत में भी जहां कहीं हिंदी का विरोध (राजनैतिक आदि कारणों से) था या हिंदी का प्रयोग कम माना जाता था, जैसा कि तमिलनाडु, मिजोराम, नागालैंड आदि, अब इन राज्यों में भी हिंदी बोलने सिखाने हेतु हिंदी स्पीकिंग क्लासेस बड़ी मात्रा में प्रारंभ हुई हैं। अरुणाचल राज्य की जन व्यवहार की भाषा हिंदी है तथा नागालैंड राज्य ने द्वितीय राजभाषा के रूप में हिंदी को मान्यता दी है। दक्षिण हिंदी प्रचार सभा मद्रास, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा, आदि की हिंदी परीक्षाओं में भारी संख्या में लोग शामिल हो रहे हैं।"[3] यह तो ठीक है कि हिंदी देश-विदेश में दिन ब दिन वृद्धि होती जा रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में हिंदी भाषा की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है।

शिक्षा व्यवस्था में भाषा शिक्षण का महत्वपूर्ण स्थान होता है ताकि वह अभिव्यक्ति का साधन है। भाषा के बिना किसी भी विषय का हो परिकल्पना भी हम नहीं कर सकते। जिसकी भाषा कमजोर होती है उसकी अभिव्यक्ति भी कमजोर पड़ जाती है। इसलिए नीति व प्रणाली, जो भी हो, सबसे पहले भाषा शिक्षण पर ही जोर देते हैं। भाषा शिक्षण की दृष्टि से देखें तो हिंदी संकट की स्थिति में है। हिंदी भाषा शिक्षण के प्रति यह उपेक्षा भाव न केवल अहिंदी प्रांतों में है बल्कि हिंदी मातृभाषी क्षेत्र में भी। इसका मूल कारण खोजना भी जरूरी है। भाषाई स्तर के मतभेद को दूर करने में आज भी हम असफल हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में डॉ. राजशेखर ने लिखा है कि "गाँधी जी ने बहुभाषिकता को बढ़ावा देने के लिए सुझाव

दिया था कि उत्तर भारतीयों को एक द्रविड़ भाषा सीखनी चाहिए और दक्षिण भारतीय लोगों को हिंदी सीखनी चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। दक्षिण भारतीय लोगों से तो यह उम्मीद की जाती रही कि वे उत्तर भारतीय भाषा सीखें, परंतु उत्तर भारतीय लोगों ने कभी दक्षिण की भाषा सीखने की कोशिश नहीं की।"[4] इसी कारण भाषाई स्तर पर मतभेद गहरा होता गया, दक्षिण भारत में हिंदी के प्रति विरोध बढ़ गया। डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने लेख में लिखा है कि उसका मूल संकट यह है कि हिंदी भाषी जन में आज चरित्र बल नहीं रह गया है। वह रागात्मक निष्ठा के बिंदु पर से कट चुकी है। परिणाम यह है कि सांस्कृतिक स्तर पर वह भाषा से कटा हुआ है, पंख कटे पक्षी की तरह शून्य से तेजी से गिरता चला जा रहा है और भाषा अनाथालय की हर ओर से दुत्कारी जानेवाली निर्दोष बच्ची की तरह दिनोंदिन कुँठित और असहज होती चली जा रही है।"[5]

शिक्षा मनुष्य की बुनियादी आश्यकता है। यह सफल राष्ट्र की आधार शिला है। इसलिए शिक्षा हर इंसान तक पहुँचाने की दिशा में देश के समग्र विकास को दृष्टि में रखकर शिक्षा नीति को बनाया जाता है। भारतीय नयी शिक्षा नीति लगभग पांच वर्षों की तैयारियों के बाद 29 जुलाई, 2020 को भारतीय मंत्रिमंडल के द्वारा शुरू किया गया था। यह भारत की नयी शिक्षा प्रणाली को रेखांकित करती है। इस नीति का लक्ष्य है 2030 तक भारत की शिक्षा प्रणाली को बदलना। भारतीय बहुभाषिकता को दृष्टि में रखा गया है। इसमें किसी एक भाषा और संस्कृति की बात न करके सभी भाषाओं पर केंद्रित बहुलता पर जोर दिया गया है। इस नीति का महत्वपूर्ण प्रावधान यह है कि भारतीय भाषाओं के सशक्तिकरण की ओर आगे बढ़ना। आधुनिकता के दौर में लुप्त होती जानेवाली भारत की लगभग 400 भाषाओं को बचाने की दिशा में यह शिक्षा नीति बहुत बड़ा कदम है। इस नीति के अनुच्छेद 4.11 के अनुसार "जहाँ तक संभव हो, कम से कम ग्रेड-5 तक लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड-8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/ मातृभाषा/ स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद घर/ स्थानीय भाषा को, जहाँ भी संभव हो, भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा। सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के स्कूल इसका अनुपालन करेंगे।" इससे हमें स्पष्ट होता है कि यह नियम वर्ष - 5 से लेकर 18 वर्ष तक के बच्चों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। विचारणीय मुद्दा यह है कि इस नयी शिक्षा नीति में हिंदी के बारे में कहीं भी स्पष्ट निर्देश नहीं है। इसके संबंध में लेखक डॉ. अमरनाथ ने लिखा है कि "राष्ट्रीय शिक्षा नीति -2020 के भाग-4 में 'बहुभाषा की शक्ति' शीर्षक के अंतर्गत अनुच्छेद 4.11 से लेकर अनुच्छेद 4.22 तक शिक्षा नीति के माध्यम भाषाओं के प्रश्न पर विस्तार से विवेचन है। इसके अनुच्छेद 4.14 और अनुच्छेद 4.20 में विशेष रूप से अंग्रेजी पर जोर है किंतु हिंदी का कहीं कोई जिक्र तक नहीं है।"[6]

भाषा संस्कृति व संस्कारों की संवाहिका होती है। भाषा बदलने से जीवन मूल्य बदल जाते हैं। भारत में स्वाभिमान, मौलिक चिंतन, भारत की एकता, अखंडता, सांस्कृतिक धरोहर एवं साधारण जनता के अंदर छिपी हुई प्रतिभा को प्रस्फुटित कर सहज विकास की गति देने के लिए मातृभाषा को प्राथमिकता दी गयी है। राष्ट्रीय नयी शिक्षा नीति में किसी एक भाषा के अध्ययन के बजाय बहु भाषिकता पर बल तो दिया गया है। यह तो सही है लेकिन भारत की बहु संख्यक लोगों की भाषा राष्ट्र भाषा की उन्नति की दिशा में जिस तरह कोठारी कमीशन में हिंदी भाषी व अहिंदी भाषी राज्यों के लिए स्पष्ट निर्देश दिया गया है वैसा हम इस नयी शिक्षा नीति-2020 में देखा नहीं जाता है। इस नीति में त्रिभाषा सूत्र की अनुशंसा तो की गई है लेकिन यह पूर्व प्रस्तावित त्रिभाषा की अपेक्षा काफी लचीली है। विवेकनाथ त्रिपाठी एवं राजशरण शाही ने यह सुझाव देते हुए लिखा है कि "भारत में भाषाई विविधता को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु त्रिभाषा फार्मूले को लाया गया। परंतु अनुभव में आता है कि त्रिभाषा फार्मूला के अंतर्गत हिंदी भाषी राज्यों के छात्र हिंदीतर राज्यों की भाषा सीखने के लिए अग्रसर नहीं होते हैं। अत:

त्रिभाषा सूत्र को इस प्रकार से बनाया जाए कि हिंदी भाषा क्षेत्र भी दक्षिण या पूर्वोत्तर की भाषाएँ सीखें, तभी सही अर्थों में भाषाई विविधता का सम्मान तथा राष्ट्रीय एकता और अखंडता का भाव सदृढ़ हो सकेगा।"[7] 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' भारतीय भाषाओं के संदर्भ में हिंदी भाषा शिक्षण की वर्तमान स्थिति पर डॉ. वेद प्रकाश ने लिखा है कि "हिंदी में बोलना अथवा अभिव्यक्ति प्रतिबंध जैसा हो गया, दंड के विधान तक स्थितियां पहँच गई। अधूरा ज्ञान अथवा संस्कृति का लोप युवा वर्ग में दिखाई देने लगा।"[8] बदलती दुनिया में भाषा का महत्व घट गया है। इससे मानवीय मूल्यों का ह्रास होना एक परिणाम है। इसलिए शिक्षा नीति में भाषा शिक्षण पर ध्यान देना आवश्यक है।

भारत की नयी शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र को लचीला बना देने के कारण भाषा के आधार पर उठनेवाले विरोधी स्वर तो कमजोर पड़ जाती है बल्कि अहिंदी प्रांतों में हिंदी के लिए नुकसान तो जरूर भोगना पड़ता है। आठवीं कक्षा के बाद हिंदी भाषा सीखना अनिवार्य नहीं है, ऐच्छिक है। स्वेच्छा से हिंदी को एक विषय के रूप में चुनने एवं पढ़ने का वातावरण अभी भी नहीं आया है। छात्र केवल पाँच विषयों के साथ वही अपनी मातृभाषा, अंग्रेजी, गणित, सामान्य शास्त्र तथा सामाजिक शास्त्रों के साथ अपनी माध्यमिक एवं माध्यमिकोन्नत की पढ़ाई पूरी कर देने के पक्ष में चले जाते हैं। दूसरा, अनुच्छेद-4.17 में कहा गया है कि संस्कृत भाषा "महत्वपूर्ण आधुनिक भाषा" है। संस्कृत को त्रिभाषा सूत्र के मुख्य धारा के रूप में शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रों के लिए विकल्प के रूप में पेश किया गया है। ऐसी हालात में अहिंदी क्षेत्र के लोग अपनी मातृभाषा के साथ संस्कृत और एक विदेशी भाषा (अंग्रेजी) तो त्रिभाषा सूत्र का अनुपालन करेंगे। हिंदी को अपनाने की आवश्यकता पर मीनाक्षी डबासी 'मन' ने लिखा है कि "आज हमारा देश विश्व की बड़ी अर्थ व्यवस्थाओं की होड़ में शामिल होने जा रहा है। अत: जब विश्व के बड़े राष्ट्रों की अपनी राष्ट्र भाषा शासकीय भाषा है तो क्यों ना हम भारतीय हमारे देश की शासकीय और राष्ट्र भाषा हिंदी को ही अपनाएँ और हिंदी के माध्यम से आगे बढ़ें क्योंकि विश्व के अनेक बड़े राष्ट्र अनेक वैश्विक स्तर की दीर्घा में अपनी शासकीय भाषा का ही प्रयोग करते हैं।"[9]

हिंदी भाषा का स्थान हमारे सामने बहुत बड़ा प्रश्न है। देश की गरिमा उस देश की भाषा से हो सकती है। राष्ट्र के निर्माण में जितना महत्व राष्ट्र ध्वज एवं राष्ट्र गीत का होता है उतना राष्ट्र भाषा का भी है। यह दर्जा प्रथम भाषा को ही दी जाती है। यह देश का प्रतीक और गौरव होता है। देश की एकता को बनाये रखने में राष्ट्रभाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हम सब जानते हैं कि हमारे देश में यह काम केवल हिंदी से ही हो सकती है। देश की अधिकांश जनता की आशा है कि हिंदी का देश की राष्ट्रभाषा के रूप में घोषणा हो जाए। हमारी शिक्षा में अंग्रेजी तो स्नातक तक अनिवार्य है। सह-राजभाषा की दर्जा भी है। पचहत्तर सालों के बाद भी हिंदी को राजभाषा की पूर्ण दर्जा प्राप्त नहीं हो पायी है। यह संकट काल से मुक्त नहीं हो पायी है। भारतीय संविधान के भाग 17, अनुच्छेद - 351 में जो बातें हिंदी भाषा की उन्नति के बारे में बतायी गयी हैं उनको भी ध्यान में रखकर हिंदी को भाषा शिक्षण में भी स्थान होना अत्यंत आवश्यक है। हिंदी साहित्य आज दलित, आदिवासी, किन्नर व बहुजन लोगों के अनुभवों से भरे विचार-चिंतन से समग्रता की ओर आगे बढ़ रही है। हिंदी भाषा के अध्ययन में उपेक्षित समाज के साहित्य को भी स्थान देने से देश में समता–बधुता, भाईचारे की भावना विकसित होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय भाषाओं के संदर्भ में डॉ. करूणाशंकर उपाध्याय ने लिखा है कि "हमें अपनी सरकारों को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वे शिक्षा का माध्यम हिंदी और भारतीय भाषाओं को रखें और अंग्रेजी दूसरी विदेशी भाषा की तरह एक भाषा के रूप में सिखाई जाए।"[10] 'हिंदी भाषा की उन्नति का अर्थ है राष्ट्र और जाति की उन्त्ति।' गांधी जी का यह स्वप्न साकार होने की दिशा में हम चलें। भूतपूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल

मंत्रालय के भूतपूर्व निदेशक (राजभाषा) शिवसागर मिश्र ने लिखा है कि "आज जब विश्व के अनेक देशों और वहां के विश्वविद्यालयों में हिंदी के पठन – पाठन तथा अध्ययन एवं अनुसंधान के प्रति उत्साह है, अपने ही देश में हिंदी के प्रति उदासीनता वस्तुत: चिंताजनक ही नहीं कष्टकर भी है।"[11] भारत की अखंडता हो या गरिमा हमारी एकता में है। इसी को बनाये रखना, भावी पीढ़ि के भविष्व की दृष्टि में हमारा चिंतन एवं प्रणाली को बनाये रखने की दिशा में कदम लेना सफल नागरिक की जिम्मेदारी है।

संदर्भ सूची :

1. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा भारती, अप्रैल–जून, 1981, अंक-13, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ - 10
2. मोनालिसा पँवार, राजभाषा भारती पत्रिका, जून 2023, पृष्ठ – 20
3. विश्व रंग पत्रिका, जनवरी-जून, 2024, पृष्ठ - 5.
4. राजशेखर, भाषा, मार्च-अप्रैल 2021, अंक 295, वर्ष 60, नई शिक्षा नीति 2020 विशेषांक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, पृष्ठ – 74.
5. धर्मवीर भारती, हिंदी दिवस एवं चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन-14-15, 2014, राजभाषा भारती हीरक जयंती विशेषांक-1949-2014, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, पृष्ठ - 14.
6. अमरनाथ, गर्भानल, प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका, मार्च-2021, वर्ष 11, अंक 01, इंटरनेट संस्करण 172, पृष्ठ - 4.
7. विवेकनाथ त्रिपाठी, भाषा ई जर्नल, सितंबर–अक्तूबर, 2023, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, पृष्ठ - 85-86.
8. वेद प्रकाश सं, हंस शोध सुधा पत्रिका 2021, पृष्ठ-77
9. मीनाक्षी डबासी 'मन', भाषा, द्वैमासिक पत्रिका, अंक 295, वर्ष 60, मार्च-अप्रैल 2021, पृष्ठ-32.
10. करूणाशंकर उपाध्याय, भाषा, अंक 295, वर्ष 60, मार्च-अप्रैल 2021, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, पृष्ठ - 14.
11. राजभाषा भारती, अप्रैल–जून 1981, अंक-13, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ - 9.

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, तिरूपति,
आँध्र प्रदेश

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

A Peer Reviewed Journal

Reg No. 124726035RC0001

ISSN : 2562-6086

Price : $ 20.00, ₹ 400

वर्ष-6 जनवरी-मार्च 2024 अंक-1

पुस्तक भारती के प्रकाशन

संपादकीय कार्यालय

Toronto, Ontario, Canada, M2R 3E4

email : pustak.bharati.canada@gmail.com

प्रबंध एवं वितरण

Pustak Bharati (Books-India)Publishers & Distributors

H.No. 168, Nehiyan,Varanasi-221202, U. P. India

email: pustak.bharati.india@gmail.com